तुझसे नाराज़
नहीं ज़िंदगी
भानु प्रकाश

भानू प्रकाश

जन्म: 4 अक्टूबर 1983, इलाहाबाद में। लेकिन बचपन और प्रारंभिक जवानी झारखंड के कोडरमा जिले के एक गाँव में बीते।
पिता: स्वर्गीय पारसनाथ पाठक, पूर्व में कल्याण विभाग के कर्मचारी
माता: जयन्ति पाठक, गृहिणी
शिक्षा: Cambridge Institute of Technology, Ranchi University से इंजीनियरिंग में स्नातक (2009)
सम्प्रति: इंडियन ओवरसीज बैंक में (2011 से) प्रबंधक के रूप में कार्यरत भानू प्रकाश उन लेखकों की श्रेणी में आते हैं जो रिलैक्स होने के लिए लिखते हैं। कुछ बढ़िया लिख पाने की संतुष्टि दिन भर की थकान को मिटा देती है। इन्हें इंजीनियरिंग और बैंकिंग छोड़कर बाकी हर चीज़ में इंटरेस्ट है। इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन, सिनेमा, क्रिकेट, संगीत, क्विज, भ्रमण आदि-आदि। आधा देश घूम चुके हैं, पूरा घूमने की उम्मीद है। ज़्यादा-से-ज़्यादा ज्ञान बटोरने की ख़्वाहिश।
कुछ छिटपुट रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'तुझसे नाराज़ नहीं ज़िंदगी' एक बड़ी कोशिश है ख़ुद को लेखक के रूप में स्थापित करने की।
ईमेल: bhanu83.19@gmail.com

तुझसे नाराज़ नहीं ज़िंदगी

भानू प्रकाश

हिन्द युग्म
hindyugm.com
BLUE

ISBN: 978-93-84419-64-6

प्रकाशक:
हिन्द-युग्म
201 बी, पॉकेट ए, मयूर विहार फ़ेस-2, दिल्ली-110091
मो.- 9873734046, 9968755908

कला-निर्देशन: विजेंद्र एस विज

पहला संस्करण: 2017

© भानू प्रकाश

Tujhse Naraz Nahin Zindagi
(A novel by Bhanu Prakash)

Published By
Hind Yugm
201 B, Pocket A, Mayur Vihar Phase 2, Delhi-110091
Mob: 9873734046, 9968755908
Email: sampadak@hindyugm.com

Website: www.hindyugm.com
First Edition: 2017

पिता जी को समर्पित

विषय-सूची

कुछ अपनी बात
उपक्रमणिका
अकर्मण्यता की ओर
तुम क्या जानो प्यार क्या है!
तुझसे नाराज़ नहीं ज़िंदगी
तुम्हारे लिए

कुछ अपनी बात

कैसा होता होगा वह एहसास जब कोई माँ पहली बार अपने नवजात शिशु को छूती होगी, देखती होगी? कह नहीं सकता। अपने लिखे हुए कागज के पन्नों को किताब की शक्ल में आते देखना कुछ वैसा ही एहसास है शायद। जैसे कोई माँ अपने शिशु को नौ महीने सहेजती है अपने पेट में, वैसे ही लगभग डेढ़ साल सहेजा है मैंने अपनी रचना को अपने मष्तिष्क में। लेखक जब कोई कहानी लिखना शुरू करता है, तब उसके दिमाग में कुछ और कहानी होती है, लेकिन अंत तक पहुँचते-पहुँचते वह कोई और स्वरूप ले लेती है। कहानी के पात्र मानो कागज से निकल-निकल कर खुद अपने संवाद कहने लगते हैं, खुद अपनी मंजिल तय कर लेते हैं। शुरुआत में मैंने चाहा था कि यह एक प्रेम कहानी न हो। प्यार-मोहब्बत की असंख्य कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं, इन पर असंख्य फिल्में बन चुकी हैं। मैं जीवन-दर्शन, आस्तिकता, नास्तिकता जैसे गूढ़ विषयों पर कुछ लिखना चाहता था। लेकिन काल्पनिक पात्रों को गढ़ना मुश्किल होता है। हमेशा यह डर होता है कि कहीं पात्र बनावटी न लगें। कहीं उनके चरित्र में विरोधाभास न झलके। अपने आसपास की कहानियाँ चुनना हमेशा सुरक्षित होता है...

यह कहानी काल्पनिक होते हुए भी लेखक के जीवन से प्रेरित है। कहानी को रोचक बनाने के लिए नाटकीयता का सहारा लिया गया है। कुछ जगहों, संस्थाओं और व्यक्तियों के नाम मूल रूप में लिए गए हैं। लेकिन इसे सिर्फ एक कहानी की तरह लिया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं।

इस कहानी की लेखन-यात्रा इस कहानी की तरह ही उतार-चढ़ाव वाली है। फेसबुक पर मेरी कुछ पोस्ट्स पढ़कर एक मित्र ने मेरे लेखकीय कौशल को पहचाना था। लेकिन

खुद मुझे अपनी प्रतिभा पर संदेह था। फिर भी एक दिन मैं कागज-कलम लेकर बैठ गया। सोचना जितना आसान होता है, लिखना उतना ही मुश्किल। शुरुआती दिनों में घंटों की मेहनत के बाद भी एकाध पन्ने ही लिख पाता था। साथ में मेरे कार्यक्षेत्र (बैंकिंग) की चिंता-परेशानियाँ। ऊबकर मैंने लेखन-कार्य को ठंडे बस्ते में डाल दिया और हिंदी साहित्य के सभी नामचीन कथाकारों को पढ़ना शुरू किया। बीच-बीच में मेरी दबी हुई प्रतिभा उछाल मारती और इस प्रकार लगभग डेढ़ साल में मेरी यह मैराथन रचना पूरी हुई।

निस्संदेह किसी लेखन-कार्य में सबसे बड़ा त्याग लेखक की पत्नी का होता है। मैंने जरूर सैकड़ों घंटे सफेद कागजों और काले अक्षरों के बीच गुजारे, दिमाग को दही की तरह मथा, लेकिन अपनी पत्नी का बहुत सारा समय उससे छीना। साथ ही उसे सबसे पहले मेरे लेखन को पढ़ना पड़ा। अपने खुद के हिस्से को वह चाव से पढ़ती, बाकी को सिर्फ मेरा मन रखने के लिए। इसलिए श्रीमती सोनी पाठक को धन्यवाद। मेरा परिवार, विशेषतः मेरी माँ जिन्होंने विशेष रुचि दिखाई थी इस लेखन के दौरान। मेरे कॉलेज के मित्र अजय, अमर, ब्रजेश, अनीस और सुशांत जो इस कहानी में आए हैं, उनका आभार। लेकिन जिस शख्स ने मेरे लेखकीय गुण को पहचाना और मुझे कहानी लिखने के लिए प्रेरित किया, श्री जयकिशन साहू, उन्हें विशेष धन्यवाद। और 'हिंद युग्म' को अनेकानेक धन्यवाद-मुझ जैसे नए लेखक पर भरोसा जताने के लिए।

उपक्रमणिका

नवंबर के महीने में इतनी बारिश का होना वाकई आश्चर्यजनक था। लगातार तीन दिनों की बारिश के बाद आज थोड़ी-सी राहत है। बादल छँट जाने से आसमान साफ नजर आ रहा है और चौदहवीं के चाँद की रोशनी अँधकार में डूबे गाँव को रोशन करने के लिए पर्याप्त साबित हो रही है। बरसात में भीगे घास पर फच-फच की ध्वनि निकालते हुए प्रकाश चुपचाप चला जा रहा है। दोनों हाथों से पायजामे को ऊपर खींचे हुए, एकांतप्रिय प्रकाश रोज की भाँति अपने गंतव्य पर पहुँचकर रुकता है। आज तो पक्की (सीमेंट की बनी आयताकार पट्टी, जो शायद बच्चों के खेलने के लिए बनाई गई थी) पूरी गीली हो गई है। कुछ देर तक वह चुपचाप किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहता है, फिर चप्पल निकालकर उस पर बैठ जाता है। चाँदनी रात, मंद-मंद शीतल हवाएँ, चारों ओर फैली खामोशी किसी नीरस इंसान को भी शायर बना देती, लेकिन प्रकाश के लिए यह रोज की बात थी। बरगद के झुरमुटों में छिपे चंद्रमा को देखते-देखते जब वह ऊब गया, तो जेब से मोबाइल निकालकर पेरने लगा। अपनी ही खींची तस्वीरों को देखता जाता और जो नापसंद होती, उसे डिलीट कर देता। यह पंकज की फोटो मेरे मोबाइल में! स्साला मतलबी आदमी! डिलीट। यह सोनू की शादी का वीडियो? मेरी शादी में मिलने भी नहीं आया। डिलीट। कंचन! अचानक उसका हाथ रुक जाता है। ...लेकिन अब क्या फायदा? मेरी भी शादी हो चुकी है और वो भी न जाने अब कहाँ होगी! डिलीट। “अरे छोटू, अकेले बैठे क्या कर रहे हो?” संध्याकालीन शौच से लौटते पड़ोसी बिशुन की आवाज ने उसे चौंका दिया। “बस ऐसे ही। बिजली नहीं है, इसलिए यहाँ बैठा हूँ।”

“चलो घर, यहाँ बैठे-बैठे मच्छर क्यों कटवा रहे हो?”

"आप बढ़ो, मैं पीछे आता हूँ।" अचानक उसे ख्याल आया कि घर जाकर भी वह क्या करेगा? वही मनहूसियत भरा माहौल, अँधेरा, मच्छर और तन्हाई। बीवी भी मायके गई हुई है। घर में माँ और भाभी की खिच-खिच सुनने से अच्छा है यहीं बैठा जाए। एक भीगा हुआ कुत्ता गश्त लगाता हुआ उधर आया, उसे देखकर ठिठका, फिर जब आश्वस्त हो गया कि वह उसे तंग नहीं करेगा, तो चुपचाप सूखी जमीन तलाशकर बैठ गया। उसकी नजरें मोबाइल से हटकर कुत्ते की ओर टिक गईं। कुत्ते को एक मक्खी तंग कर रही थी। कभी वह अपने पिछले पैरों से अपने कानों को खुजाता, कभी मुँह घुमाकर दाँतों से अपनी पूँछ को काटता। कितना बेबस है यह जीव! क्या जरूरत थी भगवन्, ऐसे जीवों को पैदा करने की! न खाने का ठिकाना, न रहने का। किसी ने कुछ दे दिया तो खा लिया, कहीं सो गया। क्या अर्थहीन जीवन है! अचानक उसे ख्याल आया कि उसका जीवन भी कुछ खास बेहतर नहीं है। दो साल हो गए हैं पढ़ाई पूरी किए हुए, भी तक वह बेरोजगार है। शादी हो चुकी है और भगवान की दया से वह बाप भी बनने वाला है। एक शादीशुदा आदमी अगर बेरोजगार हो, तो समाज में उसे क्या-क्या ताने सुनने पड़ते हैं, उससे बेहतर कौन जानेगा? आज ही संतोष ने क्या कहा कि प्रकाश, जल्दी से कोई नौकरी ढूँढ़ लो नहीं तो बीवी किसी और के साथ भाग जाएगी। बात पेट भरने और तन ढँकने की नहीं है, बात है सम्मान से जीने की। खासकर जब आप इंजीनियरिंग किए हुए हों, तो लोगों की उम्मीदें बढ़ जाती हैं।

फोन की आवाज से उसकी विचार-श्रृंखला टूटती है। मित्र अजय का फोन था- "क्या प्रकाश, क्या चल रहा है? ...अच्छा सुनो, तुम्हारा रोल नंबर बताओ, इंडियन ओवरसीज बैंक का रिजल्ट निकला है।" "एक मिनट रुकना।" वह फोन काट देता है। फोन के मैसेज बॉक्स में सेव रोलनंबर निकालता है और उसे अजय को फॉरवर्ड कर देता है। उम्मीद की हल्की-सी आहट से उसका दिल जोरों से धड़कने लगता है। वर्षों से खुशखबरी सुनने को तरस चुके उसके कान खड़े हो जाते हैं।

"...तो प्रकाश, तुमको क्या लग रहा है, तुम्हारा हुआ है या नहीं?"

"अबे पहेलियाँ मत बुझाओ, जल्दी बताओ क्या हुआ?"

"वैसे तुम कैसा फील कर रहे हो अभी?"

"मुझे लग रहा है, जैसे मैं हॉट सीट पर बैठा हूँ और तुम मुझे केबीसी खिला रहे हो!"

"हा-हा-हा, प्रकाश! आज का दिन और समय नोट कर लो। आज के बाद तुम मुझे जिंदगीभर याद रखोगे। हाँ प्रकाश, तुम बैंक मैनेजर बन गए।"

अप्रत्याशित मिली खुशी को हजम करना कभी-कभी कठिन होता है। वह कुछ देर तक मतिशून्य बैठा रहता है। घर में इस खबर को सुनाने से पहले इसकी सत्यता जाँच लेनी चाहिए। वह एक अन्य दोस्त को, जिसके पास इंटरनेट था, फोन करता है। पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद उसके हाथ अपने आप सीमा को कॉल कर देते हैं। फिर कुछ पल अविश्वास के, खुशी के, संतोष के, धन्यवाद के। न उसे कुछ समझ में आता था, न सीमा को कि क्या बात करे। वह दौड़कर अपने परिवार में यह खबर सुनाने जाती है, इधर प्रकाश अपने अंदाज में माँ से धीरे-से कहता है- "माँ, एक छोटी-सी खुशखबरी है।"

"क्या?"

"बैंक के रिटन में हो गया है मेरा।"

उस रात वह सो नहीं सका। अनेक कल्पनाएँ, अनेक यादें। करवट बदल-बदल कर वह तीनों कालों- भूत, वर्तमान और भविष्य में जी रहा था। एक-एक कर कई यादें उसकी आँखों के सामने चलचित्र की भाँति आती गईं और वह उन यादों में खोता चला गया...

अकर्मण्यता की ओर

सात साल पहले

घर के शांत वातावरण में टीवी एक सदस्य की तरह काम कर रहा था। पिताजी एक टेबल पर चुपचाप भोजन किए जा रहे थे, दूसरी कुर्सी पर भैया बैठे पेपर उलट रहे थे और मैं दूरदर्शन पर प्रसारित उबाऊ कार्यक्रम को झेल रहा था। घर के पुरुष सदस्यों में एक अनकहा समझौता जैसा था। हम लोग माँ की उपस्थिति में ही एक-दूसरे से बात कर पाते थे। यह नियम कब बना था मुझे याद नहीं, शायद बचपन से ही। पिताजी शुरू से ही बच्चों से दूर-दूर रहते। पिता के प्यार की कमी माँ और अन्य भाई-बहनों से पूरी होती। लेकिन बहनों की शादी होते ही घर में एक वीरानगी-सी छा गई। अब भैया से भी सिर्फ आपातकाल में ही बात होती। पिताजी के चरित्र-चित्रण के लिए सिर्फ एक ही शब्द पर्याप्त होगा- ब्राह्मण। जन्म से तो थे ही, कर्म और रूप-रंग से भी एक ब्राह्मण। मँझोले कद के दुबले-पतले, लेकिन तेजस्वी पुरुष। चेहरे से नूर टपकता और आत्मगौरव की एक झलक। शास्त्र-पुराणों में अखंड विश्वास था और उन कहानियों पर संदेह करने वालों को वो नास्तिक मानते थे। पूजा-पाठ के अतिरिक्त उनका एक और शौक था- बिना पूछे स्वास्थ्य संबंधी सलाह देना और हो सके तो दवाई भी देना। उनके रूम में फुटपाथ पर बिकने वाले 'अपना रोग-अपनी चिकित्सा' से लेकर 'निरोगी दुनिया' तथा 'कल्याण' के स्वास्थ्य संबंधी विशेषांक पाए जाते थे। होम्योपैथी और बायोकेमिक की गोलियाँ उनके बैग में भरी रहती थीं। लेकिन ये सभी दवाइयाँ और किताबें खुद उनके लिए बेकार थे। वे हृदयरोग के मरीज थे और साथ ही पेट की समस्याओं से परेशान रहते थे। परहेज के नाम पर उनके खाने की सूची से एक-एक कर खाद्य पदार्थ कम होते गए। तेल-मसाले को वो

जहर मानते, बैंगन, सेम, गोभी, चावल, सरसों तेल आदि त्याज्य थे। पर ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता गया। दवाइयाँ बढ़ती गईं, आहार कम होते गए, लेकिन गैस्ट्रिक की समस्या कभी खत्म न हुई।

पड़ोस की स्त्रियों की समस्याओं और शिकायतों पर विचार-विमर्श कर माँ घर को लौटीं। उनके घर में घुसते ही मुझे हिम्मत हुई। मैंने माँ को इशारा किया। माँ समझ गईं, मैं अपना रिजल्ट दिखाना चाहता था। निराशाभरे शब्दों में कहा- "हर चीज मेरे ही माध्यम से! खुद क्यों नहीं कहते। मुझे समझ में नहीं आता, आप लोग आपस में बात क्यों नहीं करते? एक टीवी खोल देना है, फिर अपनी-अपनी दुनिया में मग्न हो जाना है।" पिताजी जैसे ध्यान से जागे। आश्चर्य से सबका चेहरा देखा, मानो पूछ रहे हों- क्या हुआ?

"पूछिए, कौन क्या कर रहा है, घर में क्या चल रहा है। घर से कोई मतलब तो है नहीं। बस अपना ऑफिस और अपनी दुनिया।" टीवी बंद करते हुए माँ ने कहा।

"पूछना क्या है, यहाँ सब अपनी मनमानी करते हैं। मेरी बात कोई माने, तब तो मैं कुछ कहूँ।" पिताजी लय में आ चुके थे। एक बार लय में आ जाएँ, तो उन्हे रोकना सचिन को रोकने से भी ज्यादा मुश्किल था। हाथ पोंछते हुए बड़बड़ाना जारी रखा- "इसको (मेरी ओर इशारा करके) मैंने कहा था, इंजीनियरिंग की तैयारी मत करो। मगर नहीं! पढ़ाई आधी छोड़कर साहब पटना गए तैयारी करने। एक साल इधर ख्.स्ष्. में बर्बाद किया, फिर एक साल उधर तैयारी में। न इधर का रहा, न उधर का। दो साल बाद भी कहीं सेट नहीं हुआ। वहीं-के-वहीं। जो आदमी अपने माँ-बाप की बात नहीं मानता है, उसका यही हाल होता है। अब तो जाने क्या होगा इसका भविष्य! मेरा क्या है, अगले साल रिटायर हो जाऊँगा, फिर...?"

माँ ने धीरे-से एक लेटर पिताजी की ओर बढ़ा दिया।

"क्या है?" आधी निगाह से देखते हुए पिताजी ने पूछा।

"झारखंड इंजीनियरिंग का रिजल्ट है। मेरा हो गया है इसमें।"

मैंने खुलासा किया। आश्चर्य, खुशी और झेंप, तीनों भाव पिताजी के चेहरे पर उभरे। खुशी को दबाते हुए पूछा- "काउंसिलिंग कब है?"

माँ ने हमला बोला- "मेरे लड़के को कम समझते हैं क्या? बस समय साथ नहीं दे रहा था, नहीं तो कब का हो जाता!"

"भगवान को ये मानता ही नहीं है, इसलिए इसके हर काम में रुकावट आती है।" सींक से दाँत कुरेदते हुए पिताजी ने कहा।

"भगवान को मैं मानता हूँ। बस गणेशजी, हनुमानजी और ये इंद्र, पवन, वरुण, न जाने क्या-क्या... सब काल्पनिक पात्र हैं।"

पिताजी ने हाथ से इशारा किया- चुप हो जाओ। शायद वो मुझसे व्यर्थ की बहस में उलझना नहीं चाहते थे।

***

नई जगह पर हमेशा मुझे एक अनजाना-सा भय लगता है। अज्ञात का भय, बदलाव का भय। कॉलेज का पहला दिन, हॉस्टल के एक छोटे-से कमरे में बैठा मैं रेडियो सुन रहा था। दिमाग घर की यादों में उलझा था या शायद यह सोच रहा था कि आगे क्या-क्या व्यवस्था करनी है। तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। इससे पहले कि मैं उठकर दरवाजा

खोलता, धड़ाक की आवाज के साथ दरवाजा खुल गया। किसी सी-ग्रेड फिल्म के गुंडे की भाँति तीन-चार लड़के मेरे सामने अवतरित हुए। एक पतला-लंबा लड़का, जो शक्ल से ही बदमाश दिख रहा था, कमर पर हाथ रख तिरछा खड़ा हो गया और पूछा- "क्या है?"

"कहाँ क्या है?" मैंने आश्चर्य व्यक्त किया।

"स्साला, ऐसे बात करेगा! नीचे उतर, चल इधर आ"

मैं समझ गया, इंजीनियरिंग कॉलेज का पहला अध्याय, रैगिंग शुरू हो गई है।

"मैनर्स नहीं सीखा है तुम, सीनियर्स से कैसे पेश आते हैं?"

"भैया, मैंने क्या किया है?" सहमते हुए मैंने पूछा।

"चुप! जबान लड़ाता है! एक देंगे न खींचकर, सब सीख जाएगा। चल शर्ट उतार।" एक ने मेरी गरदन पकड़ ली।

"छोड़ दो, छोड़ दो। धीरे-धीरे सब सीख जाएगा" दूसरे ने कहा।

"सीख जाएगा क्या मतलब? कब आया हॉस्टल में?"

"वैसे तो हम पाँच तारीख को ही एडमिशन ले लिए थे, लेकिन क्या हुआ कि..."

"अबे ज्यादा डिटेलिंग मत झाड़! हॉस्टल में कब आया?"

नाटे कद के एक पतले हीरो ने मेरा गाल पकड़कर दबा दिया।

"आज।"

"तो कान खोल के सुन ले, यहाँ के रूल्स एंड रेगुलेशन। नंबर एक- जब भी कोई सीनियर दिखाई दे, विश करने का 45 डिग्री पर झुककर। दो- सीनियर जब बुलाए, जहाँ बुलाए, जो काम दे, सब करने का। और हाथ पॉकेट से बाहर निकाल।"

"जी सर।"

"बाल छोटा। देख इतना बड़ा (उँगली का प्रथम भाग दिखाते हुए) कॉलेज में नो जींस, नो टी-शर्ट। फॉर्मल शर्ट-पैंट विद कॉलर बटन बंद।" पाँच फुट के सीनियर ने हाथ के इशारे से समझाया।

इस भयावह आँधी के बाद मुझे सँभलने में समय लग गया। काफी देर बाद मेरी चेतना वापस लौटी। कहीं इंजीनियरिंग में आना गलत कदम तो नहीं था!

***

ऑडिटोरियम नए विद्यार्थियों के स्वागत के लिए सज चुका था। कुल 180 नए विद्यार्थी आए थे, सभी संकायों को मिलाकर। सभी के चेहरों पर घबराहट और माहौल में एक अनजानी-सी चुप्पी छाई थी। लोग चेयरमैन के भाषण का इंतजार कर रहे थे। हमारे चेयरमैन श्री राम इकबाल सिंह एक सम्मानित और जाना-पहचाना नाम थे। वो पहले एक प्रोफेसर रह चुके थे। सेवानिवृत्ति के बाद शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने हाथ आजमाया। छोटे-छोटे स्कूलों से शुरुआत करने वाले राम इकबाल सिंह आज एक इंजीनियरिंग और एक डेंटल कॉलेज के मालिक बन चुके थे। शिक्षा को ज्ञान के माध्यम से व्यवसाय बनाने तक की उनकी यात्रा काफी रोचक और प्रेरणादायक थी। निश्चय ही वे अपने दृढ़निश्चय और मेहनत की वजह से आज इस मुकाम पर थे।

चेयरमैन ने शुरू किया- "मैं सभी नए विद्यार्थियों का इस संस्थान में स्वागत करता हूँ। यह संस्थान 'ऑक्सफोर्ड इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी' सिर्फ संस्थान नहीं है, मंदिर है।

ज्ञान का मंदिर। जब मैं प्रोफेसर के पद से रिटायर हुआ, तो मेरे मन में समाज के लिए कुछ करने का विचार आया। आरंभ में मैंने एक छोटा-सा स्कूल खोला। उसकी सफलता ने मुझे और प्रेरित किया। मैंने कई और जगहों पर स्कूल खोले, जहाँ पर बच्चों के लिए अच्छे स्कूल नहीं थे। लेकिन मुझे यह देखकर दुख होता था कि झारखंड के बच्चे उच्चशिक्षा के लिए दूसरे राज्यों में जाते हैं। हमारे बच्चों में पढ़ने की इच्छा है, लेकिन अवसर नहीं है। सभी कोई मेसरा और सिंदरी तो नहीं जा सकते। तभी मैंने निश्चय किया कि झारखंड में भी अपना इंजीनियरिंग कॉलेज होगा।"

"स्साला, फिर से वही हिस्ट्री सुनाएगा" बगल की कुर्सी से आवाज आई। चेयरमैन ने जारी रखा- "आप लोग यकीन नहीं करेंगे, जब मैं पहली बार यहाँ आया था, अमन जी (अपने पुत्र को भी जी लगाकर संबोधित करते थे) के साथ... कुत्ता और सियार घूमता था यहाँ दिन-दोपहर। टिटहरी बोलती थी। इतना वीराना था यह जगह। अमन जी ने तो फौरन मना कर दिया था। एकदम-से बोले कि यहाँ इंजीनियरिंग कॉलेज खोलना पागलपनी है। वापस लौट गए। लेकिन मेरे दूरदर्शी आँखों ने वहाँ भविष्य देखा। मैं अपने निश्चय पर अडिग रहा और रिजल्ट आज आपके सामने है।"

भीड़ ने तालीलियों की गड़गड़ाहट से हॉल गुँजा दिया। एक गिलास पानी पीकर वे फिर शुरू हो गए- "ये कॉलेज नया जरूर है, लेकिन विश्वास रखिए, यहाँ आकर आपने कोई गलती नहीं की है। किसी भी चीज की शुरुआत जीरो से ही होती है। आज का यह छोटा-सा कॉलेज, हो सकता है कि आने वाले समय में देश का नंबर-वन कॉलेज बन जाए। ये आप लोगों की मेहनत पर निर्भर करता है। आप लोग मेहनत करेंगे, तो अच्छे इंजीनियर बनेंगे। देश-विदेश में हमारा नाम रोशन करेंगे। एक दिन हो सकता है, आपके बच्चे इस बात पर फख्र करें कि आप ओआईटी के प्रोडक्ट हैं।"

"एक नंबर का लालची आदमी है ये राम इकबाल सिंह।" बगल वाले शख्स ने फरमाया। मैंने आश्चर्य व्यक्त किया- "क्या बात कर रहे हैं आप! मुझे तो ये भले मानुष लगते हैं।"

"धीरे-धीरे आपको सब पता चल जाएगा। आपको क्या लग रहा है, इतना पैसा ये दूध बेचकर कमाया है क्या? बहुत घपला किया है।" सहमत न होते हुए भी मैंने सहमति में सिर हिलाया। सफल आदमी के हजारों आलोचक होते हैं। शायद इससे हम अपनी असफलता ढँकना चाहते हैं।

***

सोमवार और बुधवार को मेस में भोजन करना कोई जंग लड़ने से कम नहीं था। इन दो दिनों में नॉनवेज मिलता था। घर से बाहर रहने वाले और मेस का जेलनुमा खाना खाने वाले विद्यार्थियों के लिए ये रात स्पेशल थी। पहले सीनियर्स खाते थे, बाद में हमारा नंबर आता था। मैं तो शाकाहारी था, लेकिन मेरे साथियों को ये भेदभाव मंजूर नहीं था। सीनियर्स पहले आकर चिकन का बढ़िया वाला पीस खा जाते थे, बाद में केवल झोर बचता था। उस दिन मेरे हिम्मती साथियों ने मेस की लाइट काट दी और अँधेरे का फायदा उठाकर चिकन की कटोरियाँ उड़ा ले गए। सीनियर्स चिल्लाते रह गए। जब तक लाइट आती, यह चिकन लूट कांड सफल हो चुका था।

अभी हम लोग रूम में बैठे घटना की सफलता पर चर्चा कर ही रहे थे कि बाहर से एक शख्स दौड़ता हुआ आया और घबराहट में चिल्लाया- “खान आ रहा है, इधर ही!”

खान हमारे हॉस्टल का वार्डन था। इंजीनियरिंग के छात्रों को अपने वश में रखना आसान काम नहीं है, लेकिन वह इसमें सफल रहा था। क्रूरता का दूसरा नाम था खान। उसके नाम से लोग ऐसे डरते थे, जैसे कंस के नाम से वहाँ के प्रजाजन। एक पल में ही रूम का नजारा बदल गया। सभी गप्पें लड़ाने वाले लड़के अपने-अपने रूम की ओर भागे। एक लॉबी में ही पकड़ा गया- “कहाँ घूम रहे हो इतनी रात में?”

“कही नहीं, बस नोट्स माँगने गया था रूम 139 में।”

“हूँ, तो नोट्स कहाँ है?”

“नहीं-नहीं नोट्स लौटाने गया था।”

वार्डने ने उसे ऊपर से नीचे देखा, मानो कह रहा हो- बेटा, हमसे झूठ बोलते हो।

वहाँ से निबटकर वह सीधा हमारे रूम में आया। तब तक हम लोग सतर्क होकर किताब उठा चुके थे। कमरे के बीचोंबीच खड़ा होकर उसने पूरे कमरे का मुआयना किया। अनुभवी आदमी था। उसे मालूम था कहाँ से क्या बरामद हो सकता है! उसने दरवाजे के पीछे झाँका। यहाँ पर अधिकतर लड़के अभिनेत्रियों के पोस्टर चिपकाते थे। फिर उसने ऊपर रैक पर तलाशी ली, जहाँ दारू की बोतलें मिलने के आसार थे। आखिर में उसने हमारे बिछावन को उठाकर देखा। लड़के यहाँ पर ‘मस्तराम’ छुपाकर रखते थे। मस्तराम एक अश्लील साहित्य था, जो हॉस्टल के लगभग हर रूम में पाया जाता था। लेकिन हमने उसके आने से पहले ही मस्तराम को डस्टबिन में डाल दिया था।

जब उसे इस सघन छापेमारी से कुछ भी हासिल नहीं हुआ, तो झेंपकर मेरा पीठ थपथपाने लगा- “गुड! कहाँ से आए हो?”

“कोडरमा से।”

“कोडरमा में कहाँ से?”

“कोडरमा में डोमचाँच एक जगह है।”

“मालूम है, मालूम है। डोमचाँच में कहाँ पर?”

मुझे आश्चर्य हुआ। “शिवसागर का नाम सुना है?”

“हाँ-हाँ, हमारा पहले वहाँ आना-जाना लगा रहता था। क्या नाम है, एक माइनिंग इंजीनियर वहाँ रहा करते थे?”

“राधेश्याम बाबू...”

“हाँ-हाँ, वही। हमारे अच्छे मित्र थे वो।”

मेरे रूम पार्टनर ने मुझे शाबाशी दी- “चलो, खान तो तुम्हारा पहचानवाला निकला। अब कोई डर नहीं है तुमको।”

***

रात के सन्नाटे को चीरती भगदड़ की आवाज सुनकर मैं चौंका। इतनी रात गए ये शोरगुल! घबराकर कमरे से बाहर आया। देखा तो एक लड़के को आठ-दस लड़के लॉबी में दौड़ा रहे हैं। पहले तो मुझे ये मारपीट का मामला लगा, क्योंकि इस तरह के दृश्य हॉस्टल में आम थे। नहीं, ये जन्मदिन मनाया जा रहा था। लोग ‘हैप्पी बर्थडे’ बोले जा रहे

थे और प्यार से उसकी इज्जत उतारे जा रहे थे। एक के हाथ में तौलिए को लपेटकर बनाया गया कोड़ा था, दूसरे के हाथ में चप्पल। कोई थप्पड़ से मारता था, कोई बाल खींचता था, तो कोई पेट में गुदगुदी करता था, कोई च्यूँटी काटता था। मार खाने वाला 'बर्थडे बॉय' बस दर्द सह के हँसने की कोशिश कर रहा था। कभी-कभी 'अब बस करो भाई' बोल देता था। लेकिन हिंसक समूह बस करने के मूड में नहीं था। उसकी पैंट खींच दी गई। बेचारा जान निकालकर चिल्लाया- "अरे, अंदर कुछ नहीं पहने हैं हम... बात मानो ...लो देखो ...जो तुम्हारे पास है वही मेरे पास भी है।"

दूर खड़ा मैं इस चीरहरण का मजा ले रहा था। लेकिन ये मजा लेना मेरे लिए सजा साबित हुआ। भीड़ अचानक 'प्रकाश, प्रकाश' चिल्लाते हुए मेरी ओर मुखातिब हुई। मैं सरपट छत की ओर भागा और एक अर्द्धनिर्मित दीवार के पीछे छुप गया। दंगे के दौरान किसी पीड़ित के मन में क्या भाव आते होंगे, मुझे उस दिन पता चला, जब मैंने भीड़ को अपने चारों ओर अस्त्र-शस्त्र के साथ देखा। फिर सभी ने अपना प्यार मुझ पर उड़ेल दिया। मैंने अपने कमजोर शरीर की दुहाई दी- "अरे छोड़ दो, नहीं तो तुम लोगों पर मर्डर का इल्जाम लग जाएगा।" ये पैंतरा काम कर गया। लेकिन मेरे मन को तसल्ली तब मिली, जब मैं कुछ और मारधाड़ देखता- "मोहित और जेपी भी हमेशा अपना बर्थडे छुपाता है। आज तक मार नहीं खाया।" भीड़ हो-हो करती हुई उनके रूम की ओर चली और मैं मन-ही-मन कुछ और रोमांचक दृश्यों की उम्मीद में प्रसन्न हुआ। जेपी अपनी चौकी के नीचे छुपा हुआ था। हम लोग अभी निराशा में बाहर निकलने वाले ही थे कि उसके रूम पार्टनर ने विभीषण का रोल अदा किया। हाथ के इशारे से उसने शिकार का पता बताया। नीचे झाँका, तो वह चूहे की भाँति बक्से की पीछे दुबका हुआ था। उसके दिल पे क्या गुजरी होगी, ये तो वही जानता होगा, लेकिन हमें लगा जैसे कोई गुप्त खजाना मिल गया हो। मच्छरदानी के डंडे से सभी उसे ऐसे खोदने लगे, जैसे किसी साँप को बिल से बाहर निकालने के लिए किया जाता है। वह हँसता हुआ बाहर आया और आते ही उसने चप्पल खाई। कुछ उच्चस्तर की गालियाँ भी पड़ीं।

इस दंगा-फसाद के बाद नाच-गाना तो बनता ही था। खासकर जब जन्मदिन चेयरमैन के संबंधी का हो। विशाल चेयरमैन साहब के लड़के का साला था। लॉबी में म्यूजिक सिस्टम निकालकर लोगों ने अपने नृत्य कौशल दिखाए। जब फुल सांउड में लड़कों का 'राष्ट्रीय गान' "एक बार आजा, आजा... आजा" शुरू हुआ, तो जोश अपने आप आने लगा। जिसने शायद कभी अकेले में भी कमर नहीं हिलाई होगी, वो भी माइकल जैक्सन को फेल कर रहा था। अचानक दारू की कमी महसूस होने लगी। जोश में मैं चिल्लाया- "लाओ, आज दारू पीते हैं।" मुझे क्या पता था कि दारू का इंतजाम पहले से ही हो चुका है। पियक्कड़ उत्साहित हो गए। मुझे खींचते हुए एक रूम में ले गए। रूम अंदर से बंद किया और एक थैली निकालकर सामने रख दी। अंदर दारू की तीन बड़ी-बड़ी बोतलें थीं। आज से पहले मैंने शराब को इतने करीब से नहीं देखा था। शराब की दुर्गंध ने मेरे मन में एक अजीब-सा विकर्षण पैदा किया। मैं उठकर वहाँ से जाने लगा।

"कहाँ जा रहे हैं प्रकाश जी! अभी तो आप बड़ी-बड़ी हाँक रहे थे।"

"मैं शराब नहीं पीता, मैंने तो बस ऐसे ही कह दिया था।"

"तो हम लोग कौन-सा रोज पीते हैं। साल में एकाध-बार विशेष मौकों पर पी लिए,

और क्या?"

"देखो प्रकाश, शराब पीने से कोई बुरा आदमी नहीं बन जाता। एक-से-एक बड़ा-बड़ा अफसर लोग पीता है। और तुम किसी कंपनी में जाओगे, वहाँ पार्टी होगी, सब लोग पिएँगे और तुम अकेले अलग खड़ा रहोगे, अच्छा लगेगा क्या?"

"बात अच्छे-बुरे की नहीं है। बस ऐसे ही, कभी पिया नहीं इसलिए एक झिझक जैसी है।" मैंने सहज होने की कोशिश की।

"फर्स्ट टाइम सबको ऐसा ही लगता है, लो थोड़ा-सा पी लो।"

"ये पंडित आदमी है, कहाँ इसको माँस-मदिरा के चक्कर में में फँसा रहे हो। जाओ प्रकाश, ये सब भ्रष्ट हैं।" एक सज्जन को मेरी दुविधा का एहसास हुआ।

"ये दारू नहीं है भाई, बीयर है। इससे नशा नहीं होता है। लो एक ढक्कन।"

दुविधा और विरोध के कुछ पलों के बाद मेरेरी इच्छाशक्ति ने समर्पण कर दिया। "सिर्फ एक ढक्कन!" मैंने कहा था। एक ढक्कन कड़वा द्रव मेरे गले को खराब करता हुआ मेरे हृदय और आत्मा को भी प्रभावित कर गया। मैंने आपके विश्वास को तोड़ा है, माँ!

***

लगभग डेढ़ वर्ष बीत चुके थे, कॉलेज में आए हुए। मौज-मस्ती तो खूब हो रही थी, लेकिन अभी तक प्रथम वर्ष की परीक्षा नहीं हुई थी। सैकड़ों मुँह-सैकड़ों बातें। सुनने में आया कि कॉलेज की मान्यता रद्द होने वाली है। कोई कहता अभी तक रजिस्ट्रेशन ही नहीं हुआ है, हम लोगों का। राँची यूनिवर्सिटी मना कर रही है। कारण, हमारे कॉलेज ने पैसों के लालच में सीट से ज्यादा एडमिशन दे दिए थे। प्रत्येक इंजीनियरिंग कॉलेज में सरकार द्वारा सीटें निर्धारित की जाती हैं। आप उससे ज्यादा एडमिशन नहीं दे सकते। लेकिन हमारे राम इकबाल सिंह कानून से खेलने वाले व्यक्ति थे। जितना अच्छा वो भाषण देते थे, उससे ज्यादा अच्छा वो एक बिजनेसमैन थे। सचमुच एक लालची इंसान। नफरत भर गई मेरे मन में। अच्छाई से भरोसा उठ गया। समाजसेवा की दुहाई देने वाला सैकड़ों विद्यार्थियों का भविष्य दाँव पर कैसे लगा सकता है! क्या होगा यदि कॉलेज की मान्यता रद्द हो जाती है। मैं तो कही का नहीं रहूँगा। डेढ़ साल उधर बीएससी करने में गए, एक साल तैयारी में लगा और अब इधर डेढ़ साल यहाँ। कुल चार साल। इतने सालों बाद भी वहीं का वहीं रुका हुआ हूँ। ठीक ही कहा गया है, माँ-बाप की बात नहीं मानने वाले को हमेशा कष्ट उठाना पड़ता है।

शाम का समय। हॉस्टल से ढाबे की ओर जाने वाली कच्ची, पथरीली सड़क पर पाँच नौजवान बेमन से पैर घिसटते चले जा रहे थे। अन्य दिनों के विपरीत चुपचाप, अपने अपने विचारों में खोए। अमर ने झुककर एक पत्थर उठाया और बॉलिंग करने के अंदाज में दूर फेंक दिया।

"जो करना है, जल्दी करे।" अनीस ने चुप्पी तोड़ी- "एग्जाम लेना है तो ले, नहीं तो बता दे। कॉलेज बंद करना है तो कर दे, लेकिन जल्दी कोई निर्णय हो। केवल समय व्यतीत हो रहा है। कॉलेज में पूछो, तो कहेगा यूनिवर्सिटी की गलती है, यूनिवर्सिटी में पता करो, तो जवाब मिलेगा कॉलेज की गलती है। पता नहीं चलता कि सच्चाई क्या है?"

किसी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। एक और पत्थर अमर के हाथों से मुक्त होकर पोल पर जा टकराया। सामने से नवनीत आता हुआ दिखाई दिया। नवनीत हमारे कॉलेज का 'आज तक' था। सबसे तेज। कोई भी खबर सबसे पहले उसके पास पहुँचती थी। आते ही उसने फ़रमाया- "भाई लोग घर चले जाओ, एग्जाम बहुत डिले होने वाला है।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"बात ये है कि यूनिवर्सिटी 180 लडकों का एग्जाम लेने को तैयार है। लेकिन जो 10 लड़के एक्स्ट्रा एडमिट हुए थे, उनका मना कर रही है। उनका अभी तक रजिस्ट्रेशन भी नहीं हुआ है। तो बात ये है कि ये लड़के आज कोर्ट गए थे केस करने।"

"केस! क्यों? किसके खिलाफ?"

"अरे भाई उन लोगों ने भी पैसा खर्च किया है, डेढ़ साल समय बर्बाद किया है। अब अगर उनका एग्जाम नहीं हुआ, तो वो लोग कहाँ जाएँगे ये तो सोचो।"

"सही है, वो लोग भी क्या करें! राम इकबाल सिंह सबको फँसा दिया है पैसा के लालच में।"

"अगर मेरा कॅरिअर बर्बाद हुआ न, तो हम उग्रवादी बन जाएँगे और सबसे पहले राम इकबाल को ही गोली मारेंगे।" ब्रजेश ने भड़ास निकाली।

"हमको भी अपने ग्रुप में शामिल कर लेना भाई।" ध्यान चुटकी ले रहा था। मैं अत्यधिक निराश था। इस तरह की बातें सुनकर मन में ज्वालामुखी-सा उबलने लगा। बस एक चिंगारी की जरूरत थी और बम फट जाता। चिंगारी सुशांत ने लगाई। मेरे चेहरे पर उभरते क्रोध को ताड़कर उसने मेरी पीठ थपथपाई- "कोई बात नहीं प्रकाश, भगवान के घर देर है अंधेर नहीं।"

मै फट पड़ा- "स्साला भगवान! इसकी माँ की...। भगवान तो एक नंबर का घूसखोर है। जो उसकी पूजा करता है, उसकी चापलूसी करता है, उसी की मदद करता है। फिर चाहे वह कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो! कहा जाता है कि जैसी करनी वैसी भरनी। लेकिन हकीकत में ऐसा होता कहाँ है? दो नंबर से कमाने वाले अपने पाप का हिस्सा भगवान को चढ़ा देते हैं और बदले में भगवान उन्हें दुखमुक्त कर देते हैं। यही इंसाफ है?"

मेरे मित्रगण मेरे विचारों से असहमत जरूर थे, लेकिन मेरे मिजाज को देखकर शायद मुझसे उलझना नहीं चाहते थे। चुपचाप मुस्कराते हुए चलते रहे। कोई दस मिनट हुए होंगे कि जोर की आंधी आई। ये कहना गलत होगा कि भगवान मेरी चुनौती का जवाब दे रहे थे, लेकिन मेरे मित्रों को ऐसा ही लगा था। अचानक पूरा आसमान काला हो गया और दोपहर में ही अँधेरा हो गया। हम लोग एक ऐसे ढाबे में बैठे थे, जिसकी छत सिर्फ प्लास्टिक की थी और चारों तरफ से खुली थी। हवा के तेज झोंकों की वजह से बारिश तिरछी होकर अंदर आने लगी थी। सभी अपनी-अपनी प्लेट ढँके हुए थे धूल से बचाने के लिए। इतने में हवा का एक तेज झोंका आया और सुशांत के हाथों से चाउमिन की प्लेट उड़ा ले गया। बेचारे ने अभी शुरू ही किया था। सभी मुझे कोसने लगे- "लगता है भगवान तुम्हारी गाली से नाराज हो गए हैं, प्रकाश। आज तो प्रलय होगी।" डर तो मैं भी गया था, लेकिन मैंने सहज होने का नाटक किया- "आने दो, मैंने क्या गलत कहा है?"

अजय पूरी तरह से घबरा गया था। उसे हमेशा जिंदगी से शिकायत रहती थी, लेकिन वह मरने से भी उतना ही डरता था। वह चिल्लाने लगा- "भागो यहाँ से। कही बिजली गिर

गया तो, इस प्लास्टिक के टेंट का भरोसा है?" और वह भागा जान ले के, भीगते हुए। रोड के उस पार एक पक्का मकान था। हम भी भागे पीछे-पीछे।

***

"हैलो माँ, एक बुरी खबर है।"

"क्या हुआ, कुछ दिक्कत है?"

"माँ, बात ऐसी है कि ...वो ...मैं फेल हो गया हूँ।"

"चल झूठा कहीं का! बचपन से आज तक हमेशा फर्स्ट आया है। फेल कैसे हो सकता है!"

"ये इंजीनियरिंग है माँ! मालूम है कितनी कठिन है इंजीनियरिंग की पढ़ाई?"

"तो क्या हुआ, सच-सच बता रिजल्ट क्या रहा?"

"...अं ...फर्स्ट क्लास विद डिस्टिंक्शन।"

"हमको इंग्लिश समझ में नहीं आती है।"

"टॉप किए हैं हम। पूरी क्लास में सबसे ज्यादा नंबर।"

"सब रामजी की कृपा है।"

"अच्छा, मेहनत हम करें और श्रेय रामजी ले जाएँ! वाह!"

"ऐसा कहा जाता है। इससे इंसान को खुद पर घमंड नहीं होता। और ये भी सच है कि तुम प्रश्नपत्र खोलने से पहले गायत्री मंत्र पढ़ते थे। याद है?"

"पर अब ऐसा नहीं करता।" मैंने प्रतिवाद किया।

"तुम कहोगे क्या, हमें सब मालूम है। मन ही मन जरूर करते होगे। कोई दिखा के करता है, कोई छुपा के करता है।"

पता नहीं माँ खुद को सांत्वना दे रही थीं या मुझे अधार्मिक होने से बचाना चाह रही थीं। उनके लिए यह स्वीकार कर लेना कठिन था कि उनका पुत्र अब पूजा-पाठ नहीं करता। जो बच्चा सुंदरकांड पूरे चाव से पढ़ता था, उसके लिए श्रीरामचंद्र अब एक इतिहास-पुरुष मात्र थे। जो बच्चा गायत्री मंत्र और महामृत्युंजय मंत्र धड़ल्ले से बोलता था, उसके लिए अब ये मंत्र किसी भाषा विशेष के सुंदर शब्द मात्र थे। माँ का पूजा करना अब उसे खेल लगता था। हाँ, ये खेल नहीं तो और क्या है? ठाकुरजी को नहलाना, उसके बाद कपड़े से पोंछना, फिर नए वस्त्र पहनाना, फिर टीका-रोली करना, फिर फूल, मिश्री, जल आदि चढ़ाना। मैं अक्सर मजाक करता था- "माँ, ठाकुरजी को भूख लगी है, खाना खिला दो।"

"जो सारे जगत को खिला रहा है, उसे हम लोग क्या खिलाएँगे? ये तो बस एक श्रद्धा है, भक्ति है।" मेरी नादानी पर माँ हँसतीं।

अगले दिन मैंने वो किया जो मुझे भी नहीं मालूम कि मैंने क्यों किया। हाँ, मैं मंदिर गया था, बरसों के बाद। शायद इसलिए कि मेरे सभी साथी जा रहे थे, वो भी जो सिर्फ पास हुए थे। ऐसे में मेरा नहीं जाना एक अभिमानी संकेत होता। या शायद मैं भगवान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने गया था। जब इंसान की मुरादें पूरी हो जाती हैं, तो सबकुछ अच्छा लगने लगता है। सच में, उस दिन नारियल फोड़ना खेल नहीं लगा था। पत्थर की मूरत में भगवान नजर आए थे। पूरी श्रद्धा से मैंने घंटी बजाई थी और उसकी

टन्न की ध्वनि मेरे हृदय की ध्वनि से एकाकार हो गई थी। पूजा-पाठ व्यर्थ नहीं है, यह मन में सकारत्मक विचार पैदा करता है, ऐसा भाव जगा था मेरे मन में। यस मॉम, यू वाज़ राइट। मंदिर की सीढ़ियों से उतरते वक्त एक भिखारी मिल गया। आज सिक्के नहीं दे सकता था। मैंने दस का एक नोट उसके हाथों में थमा दिया।

रात की दैनिक सभा में मुझ पर मौकापरस्त पुजारी होने का आरोप लग ही गया। "क्या बे मतलबी इंसान! भगवान को भी सिर्फ मतलब के लिए पूजता है?" अमर के पास आज मौका था मेरी प्रगतिवादी छवि को तोड़ने का। आस्था और तर्क की इस लड़ाई में वह मुझसे कई बार हार चुका था। लेकिन आज मेरी कथनी और करनी में फर्क हो गया था।

"देखो, मैं आज भी कहता हूँ कि पूजा-पाठ से कुछ नहीं होता। जो होना है, वही होता है। आदमी बस अपना कर्म करे, बाकी फल मिलना या न मिलना 'उसके' हाथ में है।" हाथ ऊपर उठाते हुए मैंने कहा।

"मतलब तुम भगवान को मानते हो?" ब्रजेश को पॉइंट मिला था।

"नहीं, मैं भगवान को नहीं मानता।"

"तो फिर उस दिन गाली किसको दे रहे थे? और आज भी ये कह रहे हो कि फल देना उसके हाथ में है।" अनीस ने हमला बोला। चौतरफा हमले से मैं कुछ हड़बड़ा गया- "मेरा मतलब है कि मैं भगवान को नहीं मानता, लेकिन हाँ, ये जरूर मानता हूँ कि कोई न कोई शक्ति है, जो इस संसार को चला रही है। अगर आप इस शक्ति को भगवान कहते हैं, तो मैं भगवान को मानता हूँ और अगर आप चार सिर वाले या दस हाथ वाले किसी जीव को भगवान कहते हैं, तो मैं भगवान को नहीं मानता।" इस जवाब से विरोधीगण कुछ देर के लिए चुप हो गए। तकिए पर लदते हुए ब्रजेश ने अगला अस्त्र फेंका- "चलो मान लिया कि भगवान निराकार है, अर्थात उसका कोई रंग-रूप, आकार नहीं है, लेकिन संपूर्ण विश्व की गतिविधियों पर उसका नियंत्रण है, क्या तुम ऐसा मानते हो?"

"निस्संदेह," उत्तेजित होते हुए मैंने बोलना शुरू किया- "ये तो बिल्कुल स्पष्ट है कि ये दुनिया किसी विशेष नियम के अधीन चल रही है। भले ही हम और आप उसे समझ न पाएँ। अब ये पृथ्वी, सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, अन्य ग्रह भी अपने-अपने सूर्य की परिक्रमा करते हैं। ये क्या है? क्या ये अनायास है? आप कहेंगे कि यह गुरुत्वाकर्षण बल के कारण होता है। लेकिन ये गुरुत्वाकर्षण बल आता कहाँ से है? शायद इसका कोई जवाब विज्ञान के पास नहीं है।"

मेरे विचारों को आगे बढ़ाते हुए अमर ने कहना शुरू किया- "वही तो मैं बोल रहा हूँ कि विज्ञान ही सबकुछ नहीं है। ये तो तुम हो, जो ईश्वर की सत्ता को नकार रहे हो।"

"मै कहाँ नकार रहा हूँ।" मैंने कहा- "मैं ईश्वर के दैहिक रूप को नहीं मानता। मैं ईश्वर के निराकार, अगोचर, अजन्मा, सर्वव्यापी रूप को मानता हूँ। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, समय से परे है, कल्पना से परे है। वह सर्वत्र उपस्थित है। फिजिक्स के एक टीचर ने मुझसे कहा था कि अगर ईश्वर कहीं है, तो वह ऊर्जा है। वाकई ऊर्जा ही ईश्वर है, यह हमारे और तुम्हारे भीतर आत्मा के रूप में मौजूद है। जब यही ऊर्जा या आत्मा शरीर से निकल जाती है, तो शरीर मृत हो जाता है। इसलिए कहा भी गया है कि शरीर मरता है, आत्मा नहीं। आत्मा तो अमर है, अवध्य है।"

“वाह प्रकाश, वाह। क्या बात है!” बहस अपने चरम पर थी और मेरे रूम में लड़के आते जा रहे थे। कुछ तो इस गरमा-गरम बहस में भाग ले रहे थे, कुछ बस मौन रूप से मजा ले रहे थे। इतने में मेस की घंटी बज गई। आज चिकन मिलने वाला था, लेकिन कोई वहाँ से हिलने को तैयार नहीं था।

“तो इसका मतलब ये हुआ कि तुम नास्तिक नहीं हो?”

“नहीं, मैं नास्तिक नहीं हूँ। साथ ही आस्तिक भी नहीं हूँ। आप मुझे अर्द्धनास्तिक कह सकते हैं।” वहाँ उपस्थित एक सज्जन कुछ असहज हो रहे थे। “भगवान नहीं है, ऐसा कैसे हो सकता है! क्या बकवास कर रहे हैं ये लोग? क्या रामचंद्र भगवान नहीं थे? क्या हनुमानजी ने सीना चीरकर नहीं दिखलाया था? या फिर कृष्ण ने अपनी एक उँगली से पर्वत को नहीं उठाया था? कह दो कि ये सब काल्पनिक कहानियाँ हैं। विज्ञान के साथ यही दिक्कत है, वह हर चीज का प्रमाण खोजता है। दो-चार शब्द क्या सीख गए ये लोग, चले हैं भगवान पर बहस करने।” वे उठकर जाने लगे- “चलता हूँ यार, भूख लगी है।”

“अच्छा, एक बात का जवाब दो कोई। जैसा कि कहा जाता है कि आत्मा न तो जन्म लेती है न मरती है, तो फिर दुनिया की आबादी कैसे बढ़ रही है? मतलब नई आत्माओं का जन्म हो रहा है, यही न?”

“ऐसा नहीं है। कुछ जीवों की संख्या कम हो रही है, तो कुछ की बढ़ रही है। मतलब सिर्फ रूपांतरण हो रहा है।” मैंने स्पष्ट किया। लेकिन अगले प्रश्न का जवाब नहीं था मेरे पास- “सृष्टि के आरंभ में सभी जीवों की संख्या कम रही होगी। निस्संदेह नई आत्माओं का जन्म होता है, तभी तो दुनिया आगे बढ़ी।”

कुछ देर की चुप्पी के बाद अमर ने इसका समाधान सुझाया- “देखो, ऐसा है कि पूरे ब्रह्मांड की ऊर्जा नियत है। ठीक। जब कोई जीव जन्म लेता है, तो ब्रह्मांड की ऊर्जा उसके शरीर में प्रवेश करती है और जब मरता है, तो वापस ब्रह्मांड में चली जाती है। अजर-अमर वाली जो बात आत्मा के लिए कही गई है, वो वास्तव में ऊर्जा के बारे में कही गई है। जीवों की संख्या कम या अधिक हो सकती है, लेकिन उनकी कुल ऊर्जा हमेशा नियत रहती है। यही भौतिकी का भी नियम है कि ऊर्जा का न तो निर्माण किया जा सकता है, न ही विनाश। केवल उसके स्वरूप में परिवर्तन किया जा सकता है।”

“बेहतरीन व्याख्या। लेकिन एक बात बताओ अमर, जैसा कि लोग कहते हैं कि सबकुछ ऊपरवाले के हाथ में है, तो फिर कर्म क्या है? अगर सबकुछ भाग्य में पहले से ही लिखा है, तो फिर इंसान कर्म क्यों करे?” ब्रजेश ने जानना चाहा।

“मै नहीं मानता।” मैंने प्रतिवाद किया- “मुझे लगता है कि इस दुनिया में पहले से कुछ भी तय नहीं है। जो कुछ होता है, वह इंसान के कर्म से ही निर्धारित होता है।”

“अगर ऐसा है, तो फिर भाग्य की बात लोग क्यों करते हैं? क्यों कुछ लोग चाँदी के चम्मच लिए पैदा होते हैं और कुछ लोग फुटपाथ पर? क्यों कुछ लोग सुंदर पैदा होते हैं और कुछ लोग दृष्टिहीन, अपंग और गूंगे? कर्म का कौन-सा सिद्धांत यहाँ पर लागू होता है?” अजय के तल्ख सवालों से माहौल गंभीर हो गया। सचमुच, नवजात शिशु का क्या पुरुषार्थ होता है?

“वैसे तो इसका कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन मुझे लगता है कि पुनर्जन्म का सिद्धांत सही है। हो सकता है कि ये पूर्व जन्म का फल है, जो इंसान इस जन्म में भोग रहा है।”

अनिश्चय भरे धीमे स्वर में मैंने कहा।

“गलत। पुनर्जन्म का सिद्धांत पूर्णतः गलत है। एक उदाहरण लो। मान लो एक कुत्ता है, जो इस जन्म में कष्ट भोग रहा है, क्योंकि वह पिछले जन्म में पापी था। तो उसको ढेला मारनेवाला या सतानेवाला एक तरह से उसको पिछले कर्म की सजा दे रहा है। यानी भगवान का ही काम कर रहा है उसको ढेला मारकर। अब बताओ, ढेला मारने वाले को पाप लगना चाहिए कि नहीं? अगर लगता है, तो यह गलत है, क्योंकि एक तरह से भगवान ही उससे यह काम करवा रहे हैं। अगर नहीं लगता है, तो फिर कर्म-फल सिद्धांत यहाँ फेल हो जाता है।”

“वैसे भी विज्ञान के अनुसार पूरी सृष्टि की तुलना में इंसान का जन्म एक हालिया घटना है। सबसे पहले एक कोशिकीय जीव इस पृथ्वी पर आए, बाद में बहुकोशिकीय जीवों की उत्पत्ति हुई। उसके बाद जलीय जीव पैदा हुए, जैसे मछली। फिर वैसे जीवों का विकास हुआ, जो जल और थल दोनों में जीवित रह सकते थे। ये क्रमिक विकास है। बाद में कुछ जटिल संरचना वाले जीवों की उत्पत्ति हुई। इसी विकास-शृंखला की अंतिम कड़ी शायद मनुष्य है। सर्वगुणसंपन्न। सच में इंसान की विकास यात्रा हैरतअंगेज है। उसे जानवरों की तुलना में कुछ विशेष गुण मिले जैसे- बोली, हाथ, दिमाग और उच्च प्रजनन क्षमता। इन गुणों के दम पर गुफा में छिपकर रहने वाला आदिमानव आज भगवान बनने के कगार पर है। ...तो सवाल ये है कि जब इंसान नहीं था, तो कर्म-फल का सिद्धांत कैसे काम करता होगा? क्योंकि जानवरों का कोई कर्म नहीं होता। तो उस समय जानवरों के कष्ट की व्याख्या क्या हो सकती है?”

“सही बात है। एक जीव दूसरे जीव को मारकर खाता है, तो क्या मारने वाले जीव को पाप लगना चाहिए? बिल्कुल नहीं। ये तो प्रकृति का नियम है, वो अपने आहार के लिए हिंसा कर रहा है।”

“सौ बात की एक बात। यहाँ कोई नियम नहीं चलता है। सिर्फ एक नियम चलता है- जिसकी लाठी उसकी भैंस। संस्कृत में भी कहा गया है कि वीर भोग्या वसुंधरा। डार्विन ने भी सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट की बात कही थी। यही परम सत्य है।”

ब्रजेश अब ऊब रहा था शायद। जम्हाई लेते हुए बोला- “छोड़ो ये सब बड़ी-बड़ी बातें। खाना खाओ और पढ़ाई करो, वही काम देगी। बेकार की बहस करने से क्या फायदा?” अचानक हमें एहसास हुआ कि डेढ़ घंटे हो गए बहस करते हुए। पता नहीं अब मेस खुलेगी भी या नहीं दस बजे! “खुलेगी कैसे नहीं? उसका बाप खोलेगा।” सिगरेट के कश ने दिमाग में गरमी चढ़ा दी थी ब्रजेश के।

***

कहा जाता है कि वो जवानी, जवानी नहीं जिसकी कोई कहानी न हो। इक्कीस वसंत गुजारने के बाद भी आपके जीवन में कोई दुर्घटना न हो, दिल सही-सलामत हो, तो इसे आश्चर्य ही कहा जाएगा। लेकिन ये मेरा जीवन था, जहाँ सबकुछ आश्चर्यजनक ही होता है। कितने ही एकतरफा प्रेमों का भ्रम टूटने के बाद, कितने ही ब्रह्मचर्य व्रत भंग होने के बाद मैंने मन को समझा लिया था कि स्त्री-सुख मेरे नसीब में नहीं है। लेकिन क्या आप भविष्यद्रष्टा हैं? भविष्य की अनिश्चितता ही उसकी खूबसूरती है। इंजीनियरिंग की बंजर

कक्षा में उस दिन बारिश की रिमझिम फुहार की भाँति वो साँवली-सी लड़की आई थी, 'मे आई कम इन सर' कहते हुए। नजरें मिलते ही इश्क (एकतरफा) हो जाना मेरी पुरानी आदत थी। मैं उसकी ओर ही एकटक निहारे जा रहा था। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई उसे पीछे से निहार रहा है, वह भी कभी-कभी पीछे देख लेती। इस क्रम में नजरें टकरा जातीं और दिल जोर से धड़कने लगता। एक बार डर-सा लगा कि कहीं वह उठकर डाँटने न लगे या टीचर से न कह दे। लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया। उसकी इसी उदारता से मेरी हिम्मत बढ़ गई और मन में एक भ्रम भी पैदा हो गया कि वह भी मुझमें इंटरेस्टेड है।

दोस्तों का काम ही होता है दोस्त को झाड़ पर चढ़ाना और बाद में नीचे से सीढ़ी खींच लेना। "हाँ भाई, सच में वो तुमको बार-बार देख रही थी", "लगता है वो भी इंटरेस्टेड है तुम्हारे में", "अरे, प्रकाश है भी तो स्मार्ट"। लोगों ने बोल-बोल कर मुझे उसके बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया। और जैसा कि होता है, आप किसी चीज के बारे में जितना सोचते हैं, आप उतना ही उलझते जाते हैं। ज्यों-ज्यों मैं उससे नजदीकियाँ बढ़ाता गया, त्यों-त्यों मैं खुद से दूर होता गया। क्या वह भी मुझसे प्यार करती है? लेकिन वह तो सभी के साथ इसी तरह हँस-हँस कर बातें करती है, तो क्या वह सभी से प्यार करती है? लेकिन एक चीज है। मुझसे बात करते वक्त उसकी आँखों में चमक आ जाती है। एक खुशी के साथ बात करती है। औरों से तो सिर्फ उनका मन रखने के लिए बात कर लेती है। सच में वह है ही इतनी नेकदिल कि किसी को ठेस नहीं पहुँचाना चाहती, इसलिए सबसे बात करती है। लेकिन इन मजनुओं को भी सोचना चाहिए कि कुछ देर के लिए उसे अकेला छोड़ दें। जहाँ मौका मिला, ऐसे लपकते हैं, जैसे गुड़ के पीछे मक्खी। बेचारे करें भी तो क्या करें। पचास लड़कों के क्लास में सिर्फ तीन लड़कियाँ हैं। उसमें भी खूबसूरत और चंचल एक ही है। इतना टफ कंप्टीशन देखकर मैं यही निष्कर्ष निकाल पाता कि लड़कियाँ इंजीनियरिंग पसंद नहीं करतीं या फिर अभिभावक उन्हें यहाँ तक पहुँचने नहीं देते।

उस दिन वह कक्षा में नहीं आई थी। बार-बार मैं घड़ी को निहारता। अभी तो 10 ही मिनट हुए हैं, 15 ही मिनट हुए हैं। शायद वो विलंब से आ जाए। 20 मिनट हो गए, लगता है आज नहीं आएगी। आज बिल्कुल मन नहीं लग रहा था पढ़ाई में। ऐसे में शिक्षक का बार-बार मेरी ओर ताकना अखर रहा था। आखिरकार मेरी चोरी पकड़ी ही गई। "आर यू हियर?" शिक्षक गरजे- "यस यू।"

"यस सर।"

"ध्यान कहाँ है आपका?"

"कहीं नहीं।"

"तो बताओ, मैं अभी क्या पढ़ा रहा था?"

"...जी...वो...थर्मोडाइनॅमिक्स।" कक्षा में एक हँसी फैल गई। "थर्मोडाइनॅमिक्स की तो ये क्लास ही है। लेकिन मैं कौन-सा टॉपिक पढ़ा रहा था?"

(क्यों बच्चे की जान ले रहे हो साहब, जो पढ़ा रहे थे वो पढ़ाओ न) मैंने ब्लैकबोर्ड का मुआयना किया। "सर फर्स्ट लॉ ऑफ थर्मोडाइनॅमिक्स।"

"क्या है ये फर्स्ट लॉ ऑफ थर्मोडाइनॅमिक्स? समझाओ जरा..."

मुझे चुप देखकर वे और आनंदित हुए शायद। सरककर सामने आ गए और मेरे कंधे पर हाथ रखकर मुझे बैठा दिया। फिर खुद भी एक बेंच पर आधा नितंब रखकर बैठ गए। “देखो बेटा, तुम एक होनहार विद्यार्थी हो। लेकिन कुछ दिनों से मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारा मन नहीं लग रहा है पढ़ाई में। कुछ प्रॉब्लम है? देखो, इतनी दूर से तुम पढ़ाई के लिए यहाँ आए हो। माँ-बाप के इतने पैसे खर्च हो रहे हैं, कितनी उम्मीदें होंगी उन लोगों की तुमसे, मालूम है? अगर ठीक से पढ़ाई नहीं करोगे, तो मेरी तरह प्राइवेट कॉलेज का टीचर बनोगे। ...हाँ, सही कह रहा हूँ, जिसका कहीं सिलेक्शन नहीं होता है, वही टीचर बनता है। देखो, इंजीनियरिंग पास करना कोई बड़ी बात नहीं है। जो भी यहाँ आया है, खींच-तीर के पास कर ही जाएगा। लेकिन आटे-दाल का भाव तब मालूम होता है, जब आप डिग्री लेकर मार्केट में निकलते हैं। ...बाकी आप लोग खुद ही समझदार हैं।”

इश्क में गिरफ्तार व्यक्ति को ज्ञान की बातें नहीं समझ में आतीं। बातें कान में घुसकर कान से निकल गईं, दिमाग तक पहुँची ही नहीं। बस सिर हिल गया सहमति में।

कक्षा खत्म होते ही मैं लाइब्रेरी की ओर भागा, इस उम्मीद में कि कुछ चमत्कार हो जाए। किसी दैवीय प्रभाव से कंचन वहाँ मिल जाए। अपनी किस्मत और अनुमान पर मुझे कभी इतनी खुशी नहीं हुई थी, जितनी आज हुई। सचमुच किताबों के पहाड़ के सामने खड़ी वो लड़की कंचन ही थी। एक पल के लिए लगा कि मैं दौड़कर जाऊँ और उससे लिपट जाऊँ। लेकिन न तो ये जगह उपयुक्त थी इस प्रकार के प्रेम प्रदर्शन के लिए, न ही मैं इतना निर्भीक था। धीरे-से उसकी बगल में खड़ा हो गया और किताबों से छेड़छाड़ करने लगा।

“क्या ढूँढ़ रही हो?” सहज होते हुए मैंने पूछा।

“ओ... प्रकाश... कुछ नहीं, बस ऐसे ही। मॉरिस मैनो की ‘डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स’ खोज रही थी।”

“उस कॉर्नर में मिलेगी। रुको, मैं ला देता हूँ।”

एक टेबल के आमने-सामने बैठे हम दोनों अपनी-अपनी किताबों में व्यस्त हो गए। मन में कई सवाल उठते थे, लेकिन जुबान तक आते-आते रुक जाते थे। इस तरह कभी एक लड़की के साथ अकेले में नहीं बैठा था। जब भी लड़कियों से बात की थी, तो समूह में ही। आज ऐसा लग रहा था जैसे सबकी नजरें मेरी ही ओर जमी हुई हैं, इसलिए मैं सिर झुकाए किताब में गड़ा जा रहा था। खिलखिलाहट की आवाज सुनकर मैंने अपनी गरदन ऊपर की। देखा तो ब्रजेश बैठा है। “क्या बे, कितना मग्न होके पढ़ता है? अगल-बगल भी ध्यान दिया करो।”

“प्रकाश एकदम सीरियस होके पढ़ता है, इसीलिए तो फर्स्ट आता है।” मेरे बदले कंचन ने जवाब दिया। ब्रजेश के आ जाने से मेरी हिम्मत बढ़ गई थी। “हम लोगों को तो पढ़ना ही पड़ेगा न, लड़के जो हैं। अगर नहीं पढ़ेंगे, तो नौकरी कैसे मिलेगी और अगर नौकरी नहीं मिली तो लाइफ कैसे कटेगी?”

“वाह! और हम लोगों को क्या पढ़ना नहीं पड़ता?” कंचन ने प्रतिवाद किया।

“अरे, लड़कियों का क्या है! पढ़ाई बस एक शौक है, कोई मजबूरी नहीं। नौकरी मिली तो ठीक, वरना शादी करके सेट हो जाना है। टेंशन तो हम लोगों को है। नौकरी नहीं मिली, तो पिताजी भी लात मार के बाहर कर देंगे।” इस प्रकार की बहसों में ब्रजेश विशेष

आनंद लेता था।

"सही बात है," मैंने जोड़ा- "नौकरी नहीं मिली, तो ब्रजेश की शादी भी नहीं होगी। तुम्हारा क्या है, तुम तो शादी करके फॉरेन चली जाओगी, ब्रजेश बेचारा लटक जाएगा।"

"अच्छा, तो तुम लोग क्या सिर्फ शादी के लिए पढ़ाई करते हो?"

"प्रकाश को जल्दी है, इसकी उम्र बहुत हो गई है।" हँसते हुए ब्रजेश मेरे बहाने अपने दिल की बात कह रहा था।

"क्या बे, महिला एवं बाल विकास के मंत्री लोग, क्लास नहीं करना है? खाली फैमिली प्लानिंग करते रहते हो, कभी पढ़ाई भी कर लिया करो।" समीर की आवाज से हमारा ध्यान घड़ी की ओर गया। अरे हाँ, काफी देर हो गई है।

***

ब्रजेश आज बहुत खुश नजर आ रहा था। रूम में इधर-उधर टहलता और फिर आईने के सामने खड़े होकर खुद को निहारता। कभी बाँह मोड़कर अपने मसल्स देखता, तो कभी साँस खींचकर सीना फुलाता। उसके सिर पर बाल कम हो गए थे, जिसे लेकर वह परेशान रहा करता था। आईना सिर के चारों ओर ले जाकर वह मुआयना कर रहा था कि कितने बाल खत्म हो गए हैं और कितने बचे हैं। मैं चुपचाप कनखियों से उसकी हरकतों को देखकर मन-ही-मन मुस्करा रहा था। ये हम दोनों रूम पार्टनर्स के बीच एक अलिखित समझौता जैसा था कि हम लोग सीधे एक-दूसरे से बात नहीं करते थे। किसी तृतीय पक्ष की उपस्थिति में ही हमारी बातचीत होती थी। इसकी वजह शायद ये थी कि हम दोनों ही मितभाषी और संकोची थे।

"क्या ब्रजेश, बहुत बाल निहार रहे हो। कम हो गए क्या?" रूम में प्रवेश करते हुए अनीस ने अपने अंदाज में ब्रजेश को छेड़ा। "आज ब्रजेश ने कंचन से बात की है लाइब्रेरी में, इसलिए खुश है।" मैंने बताया।

"अच्छा, और तुम क्या कर रहे थे? रोज मौका मिलते ही पीछे पड़ जाते हो और हमको बोलते हो?"

अनीस- "प्रकाश तो कंचन से प्यार करता है, पटाने दो उसको। तुम काहे उसमें टाँग घुसेड़ रहे हो?"

ब्रजेश- "क्यों, उस पर किसी का नाम लिखा हुआ है? जिसमें दम है, पटाए। हम कहाँ किसी को रोक रहे हैं?"

अनीस- "लेकिन तुम तो उ फोन वाली से बतियाता है न। इसको छोड़ दो प्रकाश के लिए।"

ब्रजेश- "कौन उ पटना वाली? छोड़ दिए उसको। आजकल एक दूसरी लड़की मिल गई है। यहीं जेवियर कॉलेज की है।"

ब्रजेश उस्ताद था, इस प्रकार फोन पर फ्रेंड बनाने में। तब नई-नई मोबाइल क्रांति आई थी इस देश में। धीरे-धीरे मोबाइल उच्च वर्ग से मध्यम वर्ग की ओर पैर पसार रहा था। शौक से जरूरत बन चुका मोबाइल अब लगभग हर हाथ में नजर आने लगा था। ऐसे ही दौर में रिलायंस ने एक फ्री वाला ऑफर निकाला था। कोई 400 या 500 का पैक भराकर आप महीने भर फ्री बात कर सकते थे रिलायंस टू रिलायंस। प्रेमी जोड़ों में यह

पैक काफी लोकप्रिय हुआ। वहीं कुछ मनचलों में एक नया शौक घर कर गया। वो बेतरतीब कुछ नंबर डायल करते। अगर कोई लड़की उठा ले, तो फिर बार-बार उस नंबर पर कॉल करते। कुछ पट जाती थीं, तो कुछ लताड़ देती थीं। तो ब्रजेश साहब भी इसी फिराक में रहते थे कि कहीं से किसी लड़की का नंबर मिल जाए। फिर अपनी वाकपटुता से लड़की पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहते। अब घोड़े की देखा-देखी बेंग भी नाल ठुकवाने लगे, तो क्या होगा! एक दिन मैंने भी एक नंबर डायल किया था। लड़की ने फोन उठाया, तो मैंने पूछा- "पूजा है क्या?" "नहीं।" वह बोली।

"लेकिन ये तो पूजा का नंबर था, वैसे आपका नाम क्या है?" मैंने पूछा।

"आपको पूजा से बात करनी है न, मैं पूजा नहीं हूँ। ओके?"

"आप अपना नाम तो बताइए।" डरते-डरते मैंने कहा।

"नाम? नीचे झाँकिए... चप्पल दिखाई दी? अब उसे उठाइए और अपने गाल पर लगाइए... और आइंदा फिर चप्पल खानी हो...।" फोन कट। हर कोई हर फन में उस्ताद नहीं हो सकता।

ब्रजेश की खुशी का असली कारण अब मालूम हुआ। उसने एक रहस्योद्घाटन किया- "आज एक चीज देखे हैं लाइब्रेरी में" और फिर वह चुप होकर हम लोगों की ओर देखने लगा, ताकि हम उससे पूछें कि क्या हुआ। हमारे 'क्या देखे' पूछने पर वह रहस्य को और लंबा करने के लिए इधर-उधर ताककर मुस्कराने लगा। आखिरकार अपने टकले को सहलाते हुए उसने बताया- "आज... कंचन का ब्रेस्ट दिखायी दे रहा था। अंदर वह लाल रंग का इनर पहने थी।... ओफ, वो मांसल दृश्य! आँखें बंद करते ही सामने आ जाता है।" बुरा लगा मुझे- "साला डर्टी माइंड! खाली कचरा भरा है दिमाग में।"

"अबे दिखाई दे रहा था तो देख लिए। इसमें मेरी क्या गलती है?"

"सही है ब्रजेश। अब कोई उघार के घूमेगा तो लोग देखेंगे ही।"अनीस बोलता गया- "वैसे भी ब्रजेश के आँख में लेजर फिट है। जहाँ न जाए कवि, वहाँ जाए ब्रजेश कुमार रवि।"

"मुझे बुरा लग रहा है यार! मैं प्यार करता हूँ उससे। ऐसा मत बोलो उसके बारे में।"

"प्यार-व्यार कुछ नहीं होता है। असल चीज है सेक्स। यही चाहिए सबको। तुमको भी। ...वैसे भी इस प्यार की परिणति क्या है? तुम ठहरे पंडितजी और वो है राजपूत। क्या तुम शादी कर सकते हो उससे? है तुममें इतनी हिम्मत?... बोलो, चुप क्यों हो?" ब्रजेश के इस प्रश्न का उत्तर नहीं था मेरे पास। आज तक खाना और कपड़ा भी मैंने पिताजी की पसंद से ही चुना था। जीवनसाथी चुनने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

***

जिंदगी समतल सड़क पर चलती रहे, तो जिंदगी को मजा नहीं आता। उसे कुछ रोमांच चाहिए, कुछ संघर्ष चाहिए, कुछ धमाका चाहिए। तृतीय वर्ष में पहुँचकर अचानक ये ज्ञात हुआ कि हमारी फीस बढ़ गई है, लगभग दुगनी। वो भी पूर्व प्रभाव से। मतलब द्वितीय वर्ष से। कुल 85, 000 और देने थे इस हिसाब से पूरे कोर्स के लिए। हडकंप मच गया पूरे विद्यार्थी समुदाय में। ये क्या अनीति है भाई! सरासर अन्याय है। सुनते हैं कि फीस का निर्धारण सरकार द्वारा गठित एक टेक्निकल कमेटी करती है। इसमें हाईकोर्ट के

रिटायर्ड जज कमेटी का नेतृत्व करते हैं। तो उनके द्वारा निर्धारित फी-स्ट्रक्चर पर सवाल नहीं उठाए जा सकते। साइंटिफिक तरीके से इसका निर्धारण होता है। हाँ ठीक है, जो फीस लेनी है लो, लेकिन आप नए सेशन से लेंगे न। नए भर्ती होने वाले छात्रों से लीजिए नई फीस। पुराने छात्रों से आप बैक डेट से बढ़ी हुई फीस कैसे ले सकते हैं? हम लोगों ने जब एडमिशन लिया था, तब हमें बताया गया कि आपकी फी 18, 000 सालाना है। अब कहा जा रहा है 35, 000 पर-ईयर लगेगा। कहाँ से लाएँगे हम लोग पैसे? हम लोगों का विरोध सुनकर कठपुतली प्रिंसिपल ने सिर्फ एक ही जवाब दिया था- "जानें चेयरमैन साहब। हम लोग क्या कर सकते हैं?"

चेयरमैन साहब के पिछले रिकॉर्ड और लालची स्वभाव को देखते हुए उनसे रहम की कोई विशेष उम्मीद नहीं थी। फिर भी मरता क्या न करता! चेयरमैन साहब ने एक कागज निकालकर आगे कर दिया- "ये देखिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग का सर्कुलर। इसमें साफ लिखा है कि 2005 से यह फी स्ट्रक्चर लागू होगा। इसमें कोई विवाद ही नहीं है। आप लोग झूठमूठ का हंगामा कर रहे हैं।"

"सर इसमें 2005 सत्र लिखा है, जिसका मतलब हुआ 2005 बैच या उसके बाद एडमिशन लेने वाले। इसका गलत व्याख्या किया जा रहा है कि 2005 से नया फी लिया जाएगा।" किसी ने हिम्मत करते हुए कहा।

"आप लोग क्या ज्यादा होशियार हैं? सरकार में बैठे लोग क्या बेवकूफ हैं? जाइए, सरकार से बात कीजिए। हम कुछ नहीं कर सकते। पढ़ना है तो पैसा देना ही होगा।"

किसको पता था कि नसीब में आंदोलन भी लिखा है। उच्च शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव ने जब हमारे प्रतिनिधिमंडल से बातचीत करने से ही इंकार कर दिया, तब हमारे पास आंदोलन के सिवा कोई चारा नहीं बचा। हॉस्टल में मौजूद लड़कों के फोन घनघनाने लगे कि जल्दी से सचिवालय पहुँचो। एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे, खबर आग की तरह फैल गई। 'नेपाल हाउस (सचिवालय) चलो' का नारा पूरे हॉस्टल में गूँज गया। भर-भर कर ऑटो, बाइक, गाड़ियाँ क्रांति स्थल की ओर निकल पड़ीं। वहाँ का नजारा उत्साह बढ़ाने के लिए काफी था। लगभग 500 विद्यार्थी सचिवालय के गेट पर धरना दिए बैठे थे। कुछ दूसरे कॉलेजों के स्टूडेंट्स जिनके पास समय की कोई कमी नहीं थी, मुफ्त में सहयोग करने पहुँच गए थे। हमारे नेताजी ने हमें अब तक की गतिविधियों से अवगत कराया कि अब आंदोलन होगा। ये लोग स्टूडेंट्स की ताकत को नहीं जानते। सत्ता बदल जाती है, जब छात्र आंदोलन पर उतरते हैं। क्या ये लोग भूल गए हैं इमरजेंसी का दौर? जब तक मंत्री जी हमें बातचीत के लिए नहीं बुलाते, हम लोग यहीं बैठे रहेंगे। भाषण सुनकर कुछ लोगों ने सीटियाँ बजाईं, तो कुछ ने 'तानाशाही नहीं चलेगी' या 'गली-गली में शोर है अमुकजी चोर हैं' जैसे नारे लगाए। कुछ उत्साही युवकों ने मेन गेट को जाम कर दिया। इससे अंदर उपस्थित कर्मचारियों को परेशानी होने लगी। संध्या का समय, उनके घर लौटने का वक्त था। हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगे कि भाई हम लोगों को जाने दो, हमारा क्या कसूर है। महिलाओं को जाने दिया गया। अब तक पुलिस भी आ चुकी थी। आते ही पुलिसवालों ने अपना हस्त-कौशल दिखाया। लाठियों के बौछार से भीड़ ऐसे बिखर गई, जैसे चींटियों का झुंड तेज हवा में। गेट से हटकर अलग जमा हो गई भीड़। अंदर से खबर आई कि अपने लीडर को भेजो बातचीत के लिए। लगभग आधे घंटे बाद

नेताजी जब बाहर आए, तो उत्सुक भीड़ के खड़े कानों को कोई खुशखबरी नहीं मिली। नेताजी ने बताया- "कोई हल नहीं निकला बातचीत से। हमारी राय है कि हमें मंत्री जी के आवास पर चलना चाहिए। हम लोग यहाँ से निकलेंगे, मेन रोड पर मार्च करते हुए फिरायलाल चौक जाएँगे। वहाँ से कचहरी, जहाँ मंत्रीजी का निवास है।"

जवानी के जोश से लबरेज युवा फौज लगभग तीन किलोमीटर के लंबे सफर पर निकल पड़ी। रात के आठ बजे हाईवे पर चलते इस समूह को देखकर लोग आशंकित और चकित थे। भीड़ की अपनी सोच होती है। भीड़ की अपनी शक्ति होती है। भीड़ में व्यक्तिगत विचार खो जाते हैं, इसलिए भीड़ को नियंत्रित करना कठिन होता है। रास्ते में खड़ी साइकिल, ठेले और गाड़ियों को ठोकर मारते, भद्दी गलियाँ देते भीड़ आनंदित महसूस कर रही थी। भगवान शायद इम्तेहान और कड़ा लेना चाहते थे। रिमझिम फुहार अचानक मूसलधार बारिश में तब्दील हो गई। युवा क्रांतिकारियों का जोश और बढ़ गया। शर्ट खोलकर हवा में लहराने लगे। "स्साला बारिश! आज बवंडर भी हम लोग का रास्ता नहीं रोक पाएगा।" बारिश की मोटी-मोटी बूंदें चेहरे से चट्-चट् टकरातीं। लुढ़ककर मुँह में आ जातीं। चश्मे पर जमीं बूँदों को साफ करने के लिए कोई सूखा कपड़ा नहीं बचा। रुमाल से लेकर चड्डी तक, सबकुछ गीला। आपादमस्तक भीगे मानव समूह को मंत्रीजी का ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। शायद उन्हें पहले ही सूचना दे दी गई थी। जब हमारे प्रतिनिधि मंत्रीजी से मिलकर बाहर निकले, तो खुश दिखाई दिए। ठंड से ठिठुरते और एक-दूसरे से सटे जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा- "बातचीत आशाजनक रही। मंत्रीजी ने कहा है कि उन्हें पूरी स्थिति की जानकारी नहीं है, लेकिन वो जल्द ही अपने विभाग को निर्देश देंगे कि इस पर तुरंत कार्यवाही की जाए। उन्होंने भरोसा दिलाया है कि कोई भी निर्णय छात्रहित को ध्यान में रखकर ही लिया जाएगा।" लोकतंत्र की जीत का जश्न मनाती हुई विजेता भीड़ अपने-अपने घर को चली।

***

टेक्नोफेस्ट अभियंताओं का एक प्रकार का सांस्कृतिक मिलन है, जिसमें विभिन्न इंजीनियरिंग कॉलेजों के छात्रगण एक जगह जुटते हैं। इसमें तरह-तरह के प्रॉजेक्ट्स, रिपोर्ट्स आदि की प्रदर्शनी लगाई जाती है। कई तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे क्विज, गीत-संगीत, डांस, कॉमेडी आदि प्रतियोगिताओं का भी आयोजन होता है। इस बार हमारा कॉलेज भी टेक्नोफेस्ट का आयोजन कर रहा था। कुछ नेता टाइप छात्रों की बन आई थी। "इतने बड़े आयोजन में कितना खर्च आएगा, मालूम है तुम लोग को? बस बोल दिए कि इतना-इतना चंदा क्यों वसूला जा रहा है! एक लाख तो वो म्यूजिक ग्रुप वाला ले रहा है। धनबाद से मँगाया जा रहा है, पता है! देखो, ये कॉलेज की इज्जत का सवाल है। दूर-दूर से लोग आने वाले हैं। ऐसे में हम लोग एक-दूसरे का सपोर्ट नहीं करेंगे तो कैसे होगा? तुम्हीं लोग सोचो। सही बात है, ये आयोजन अकेले मिश्रा या परवेज की जिम्मेदारी नहीं है। 400-500 कोई बड़ा चीज नहीं है। कॉलेज की इज्जत नहीं डूबनी चाहिए।"

बाद में मनीष ने कमेंट किया था- "कॉलेज की इज्जत मेरा ठेंगा। साले चंदाखोर सब।"

मुझे भी शौक चर्राया अपनी प्रतिभा दिखाने का। गाने का शौक तो बचपन से था ही,

बस झिझक दूर करने की देर है। स्टेज से डर लगता है, लेकिन डर के आगे ही जीत है। वो स्कूल वाली बात और थी, जब मैं स्वतंत्रता दिवस का भाषण देने स्टेज पर चढ़ा था। 'आदरणीय सभापति महोदय' के आगे कुछ भी याद न रहा। झट से पॉकेट से वो लिखा हुआ भाषण निकाला। किसी धावक की तरह एक साँस में पूरा पेज पढ़ गया। दौड़कर अपनी सीट पर पहुँचा और एक लंबी साँस ली। तब जाकर सुकून मिला। लेकिन बचपन की बात और थी। तब मैं काफी संकोची था, अब तो काफी विश्वास आ गया है खुद पर। मित्रों ने एक सुर में इस प्रस्ताव का समर्थन किया। हाँ-हाँ, निस्संकोच तुमको इसमें भाग लेना चाहिए। किसको पता था कि 'भाग' लेने के चक्कर में स्टेज से भागने की नौबत आ जाएगी। जब एंकर ने मेरा नाम पुकारा, तो मैं इस तरह शान से चला जैसे हिमेश रेशमिया स्टेज शो करने के लिए जा रहा हो। स्टेज पर चढ़कर जब मैंने भीड़ का मुआयना किया, तब ज्ञात हुआ कि भीड़ क्या चीज है! लगभग एक हजार जोड़ी आँखें मुझ पर जमी हुई थीं। लगा जैसे मुझे सार्वजनिक फाँसी दी जा रही है। "प्रस्तुत है हमारे ही कॉलेज के तृतीय वर्ष के छात्र प्रकाश पाठक के स्वर में, मैं पल दो पल का शायर हूँ। सो एंजॉय दिस ब्यूटीफुल सॉन्ग।" आँखें मूँदकर मैं गाने लगा। लोगों को लगा कि मैं तल्लीन होकर गा रहा हूँ। लेकिन मैं इतना तल्लीन हो गया था कि ये भी याद नहीं रहा कि कहाँ रुकना है और कहाँ गाना है। बिना ब्रेक के अंतरा-मुखड़ा सब एक साँस में ही गा दिया मैंने। वाद्य-यंत्र वालों को भी बहुत दिक्कत हुई होगी मेरी स्पीड से मैच करने में। गाना खत्म होते ही भीड़ ने तालियाँ बजाईं, लेकिन ये तालियाँ किसी हथौड़े की तरह मेरे हृदय पर चोट कर गईं। लड़की को इंप्रेस करने के चक्कर में चौबे, दुबे बनकर लौटे।

***

फीस वृद्धि का मुद्दा किसी सर्प की भाँति रह-रहकर अपना फन उठाता था। अनेक विरोध, आश्वासन और मीटिंग्स के बाद भी मामला ज्यों-का-त्यों था। न ही प्रशासन पीछे हटने को तैयार था, न छात्र पैसे देने को तैयार थे। मंत्रीजी के आश्वासन का असर लोग देख चुके थे। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे कि कुछ नहीं होगा इस धरना-प्रदर्शन से। आखिरकार पैसा देना ही पड़ेगा। मालूम है, सब मिले हुए हैं ऊपर से नीचे तक इस खेल में। पैसा खिलाकर सबका मुँह बंद किया गया है। ...हाँ, केस-मुकदमा ही एक सहारा है, लेकिन इन सब चीजों के लिए टाइम किसके पास है?

छात्रों में असंतोष की सिर्फ यही एक वजह नहीं थी। मेस के कारीगरों को शायद इस तथ्य का ज्ञान था कि तेल और मसाले स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इसलिए वो सख्ती से इस नियम का पालन करते थे। पटल की उबली हुई सब्जी, पापड़नुमा रोटी और पनियल दाल जब टेबल पर परोसी जाती, तो हम लोग किसी संत की भाँति पेट भरने के लिए निगल लेते। 'जीने के लिए खाना चाहिए, खाने के लिए नहीं जीना चाहिए' इस कथन को हमने आत्मसात कर लिया था। दूसरी वजह थी सुविधाओं का अभाव। कभी पानी नहीं, कभी जेनरेटर फेल। शिक्षकों की गुणवत्ता से भी लोगों में नाराजगी थी। तो इतने दिनों से सुलगती चिंगारी हवा के एक झोंके से विस्फोट कर गई।

उस दिन लोग नियत समय पर मेस पहुँचे, तो ज्ञात हुआ कि खाना नहीं बना है। कारण, मुख्य कारीगर भाग गया है काम छोड़कर। बौखलाए छात्र मेस इंचार्ज को ढूँढ़ने

लगे। “देखिए, क्या होता है! हम तो साहब को इन्फॉर्म कर दिए कि दो-दो मिस्त्री भाग गया है। कुछ उपाय तो किया ही जाएगा। थोड़ा इंतजार कीजिए।” सहमे हुए मेस इंचार्ज ने अपनी लाचारगी जताई। लेकिन जख्मी-दिल छात्र किसी रियायत के मूड में नहीं थे- “आधा घंटा! आधा घंटा के अंदर अगर हम लोग को खाना नहीं मिला, तो सोच लीजिए...”

“अरे छोड़ो भाई! क्यों घटिया खाना के लिए जान दे रहे हो? चलो, कहीं बाहर खा लेते हैं।” एक सुझाव आया।

“नहीं। हम यही घटिया खाना खाएँगे और टाइम से खाएँगे।” विद्रोह की जिद को कौन रोक सकता है? हुआ वही जिसका अंदेशा था। आधा घंटा, पौन घंटा... एक घंटे बाद भी कोई इंतजाम नहीं हो सका। “खाना आ रहा है हॉस्टल नं 2 से। कुछ देर में आ ही जाएगा।” मेस इंचार्ज ने बताया। “स्साला दस बजे रात में हम लोग खाना खाएँगे।” एक बाल्टी उठाकर फेंक दिया अजय ने। विशाल खाली रूम में उसकी आवाज गूँज गई। लोग एकत्र हो गए और उठा-उठाकर बरतन, गिलास हवा में उछालने लगे। टनाक-खनाक की आवाज से पूरा हॉल थर्रा गया। कुछ उत्साही युवक प्लास्टिक की कुर्सियाँ तोड़ने लगे, कुछ टेबल पर चढ़कर तांडव करने लगे। पाँच मिनट की अफरा-तफरी के बाद जब माहौल शांत हुआ, तो हॉल डाइनिंग रूम कम, कबाड़खाना ज्यादा लग रहा था।

आधे घंटे के अंदर चेयरमैन साहब पधार गए। डाइनिंग हॉल का नजारा देखर चक्कर आ गया उनको। एकदम-से बदहवास, पागलों की भाँति चिल्लाने लगे। 65 वर्ष के वृद्ध की आवाजों में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि पूरा हॉस्टल थर्रा गया। “किसने किया है ये सब। कौन है वह दुष्ट? हिम्मत है तो सामने आओ।” उनकी आवाज सुनकर सहमे छात्र धीरे-धीरे कमरों से बाहर आने लगे और बरामदे में एकत्र होने लगे। “मैं यह गुंडागर्दी बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करूँगा। मैं यह संस्थान बंद कर दूँगा, लेकिन ये मनमानी नहीं सहूँगा। आप लोग समझते क्या हैं? मैं दिन-रात मेहनत करता हूँ कि संस्थान का नाम रोशन हो, आप लोग को अच्छा प्लेसमेंट मिले। लेकिन आप लोग संपत्ति को नुकसान पहुँचाकर मुझे अपमानित करना चाहते हैं! वो भी किसलिए, सिर्फ खाना के लिए! हर दिन तो आपको टाइम से खाना मिल जाता है। एक दिन लेट हो गया, तो आप लोग तोड़-फोड़ करेंगे? यही सीखा है आप लोग ने? घर में कभी खाना लेट से मिलता है, तो क्या घर का बरतन तोड़ देते हो? माँ को मारने लगते हो?” सहमते हुए एक विद्यार्थी ने मुँह खोला- “सर, बात खाने की नहीं है, बात है कि...”

“चुप! एकदम चुप! जुबान लड़ाते हो मुझसे। गलती करके माफी भी नहीं माँगा और चला है बहस करने। भागो यहाँ से।”

“सॉरी सर। हम मानते हैं कि हम लोग से गलती हुई है। जो भी हुआ बहुत गलत हुआ।” किसी दूसरे ने कहा। “माफी नहीं, मुझे उन लड़कों के नाम चाहिए, जिन्होंने इस घटना को अंजाम दिया। मुझे मालूम है कि ये कुछ दो-चार लड़कों की ही करतूत है। उन लोगों की वजह से अच्छे लड़के भी पिसते हैं। आप लोग उनका नाम बता दीजिए कल सुबह तक, अन्यथा मैं कॉलेज में साइनडाइ (अनिश्चितकालीन हड़ताल) लगा दूँगा।”

गाड़ी से निकला हुआ धुआँ और उड़ती हुई धूल अपने पीछे एक खामोशी छोड़ गई। स्तब्ध छात्र एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गए। जानने को तो सभी जानते थे कि गुनहगार

कौन हैं, लेकिन बताने की हिम्मत या चाहत किसी में नहीं थी। बताने का अर्थ था, लड़कों पर पुलिसिया कार्रवाई या फिर कॉलेज से निलंबन या निष्कासन।

***

अगले दिन दोपहर में हॉस्टल खाली करने का आदेश नोटिस बोर्ड पर चिपक गया। चार बजे होंगे कि कॉलेज के आला अधिकारी, एक जीप पुलिसबल के साथ हॉस्टल परिसर में चहलकदमी करने लगे। आधा घंटे के अंदर हॉस्टल खाली कर देना है। कोई सुनवाई नहीं। "तैयारी क्यों नहीं किए, नोटिस तो दोपहर में ही भेज दिया गया था। जहाँ जाना है वहाँ जाओ, पर हॉस्टल खाली करो। ट्रेन नहीं है तो बस से जाओ, बस नहीं है तो होटल में रुक जाओ। किसी दोस्त के यहाँ रुक जाओ। कब तक क्या? कुछ कहा नहीं जा सकता। हो सकता है दस दिन में ही खुल जाए, महीना दिन भी लग सकता है।...सामान तोड़ते वक्त नहीं सोचे? ...ठीक है आप नहीं तोड़े, लेकिन आपका ही कोई दोस्त तोड़ा होगा!... उस वक्त तो खूब मजा ले रहे होगे! अब भुगतो!"

कुछ लड़कों को तो घर जाने का बहाना चाहिए होता है। ये लोग दोपहर से ही तैयार बैठे हैं बैग लेकर। सामान? पूरा ले लिया है, क्या भरोसा कितने दिन बंद रहे कॉलेज। अच्छा भाई चलते हैं, जान रही तो फिर मिलेंगे। तुम लोग तो पुलिस का डंडा खाओगे, तभी जाओगे लगता है! हाँ बेटा, तुमको क्या टेंशन है! बाप एसडीओ है, इकलौता बेटा! कुछ नहीं करोगे तो भी बैठ के खाओगे जिंदगीभर।

जवानी की अपनी जरूरतें होती हैं। उसे इस बात से कोई मतलब नहीं कि आपका कॉलेज बंद हो गया है या आपकी फीस बढ़ गई है या आपका सेशन लेट चल रहा है या आपका भविष्य अनिश्चित है। शरीर की जरूरत जब दिमाग में चढ़ जाए, तो इंसान के पैर डगमगा जाते हैं। ऐसा ही हुआ था उस दिन, जब कॉलेज खुलने के बाद सभी दोस्त एकत्रित हुए थे। लंबू मनीष की 'बहादुरी' पर सब ऐसे बयान कर रहे थे, जैसे वह बॉर्डर से युद्ध जीतकर वापस आया हो! "स्साला देखने में दुबला-पतला है, लेकिन ताकत बहुत है। एक रात में चार-चार रंडी को पछाड़ दिया, मालूम है?...डींग नहीं हाँक रहा है, सही कह रहा है। रीतेश भी गया था साथ में। बोला, मनीषवा को देखते ही रंडी लोग भागने लगती हैं। पहले भी जा चुका है न, सब पहचानती हैं उसको। बोली कि डबल पैसा लेंगे। लेकिन इ भुक्खड़ लंबुआ, फिर भी तैयार हो गया।"

इधर कुछ दिनों से सेक्स मेरे दिमाग में चढ़ गया था और आज की बातचीत के बाद शरीर के रास्ते निकलना भी चाहता था। नहीं, अब और नहीं। जिंदगी का क्या भरोसा, आज है कल न रहे। ऐसे में कोई अरमान लेकर नहीं मरना चाहिए। सुख-दुख, उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। जी लो जिंदगी, कल हो न हो। मेरे कदम मनीष के रूम की ओर बढ़ गए। "तो मनीष, आजकल खूब मजे मार रहे हो?" सीधे-सीधे पूछा मैंने।

"हाँ यार, अपना तो यही है। अब तुम्हारी तरह मेरी कोई गर्लफ्रेंड तो है नहीं, इसलिए कॉलगर्ल से काम चलाना पड़ता है।"

"गर्लफ्रेंड? मेरे नसीब में कहाँ गर्लफ्रेंड?"

"वो कंचन थी ना? क्या हुआ उसका?"

"कंचन जहाँ थी, वही हैं। मैं बहुत दूर हो गया हूँ उससे। सच ये है कि मैं उसे कभी

समझ नहीं पाया। कभी लगता कि वह मुझमें इंट्रेस्टेड है, तो कभी लगता कि ये मेरा भ्रम है। वह तो सभी से इसी अंदाज में बात करती है। एक बात बताता हूँ। इस बार वैलेंटाइन डे पर मैंने एक निश्चय किया कि आर या पार। जो भी हो, बस क्लियर हो जाए। तो एक गुलाब का फूल बैग में रखकर मैं उत्साहित-सा कॉलेज की ओर चला। अभी मैं गेट के पास पहुँचा ही था कि देखा कंचन एक कोने में खड़ी सिसक रही है। पूछा तो बोली, 'कुछ नहीं बस ऐसे ही। जिद करने पर उसने बताया कि ब्रजेश आज मुझे फूल दे रहा था। ये लड़के! थोड़ी-सा हँस-बोल कर बात कर लो, तो समझने लगते हैं कि लड़की पट गई। ईडियट्स! सबके दिमाग में खाली गंदगी भरी हुई है। इन्हें सिर्फ शरीर दिखाई देता है एक लड़की में। प्यार माइ फुट। झाड़कर भगा दिया उसको।' ...तो भाई ये कहानी है मेरे अधूरे प्रेम की। डर से मेरा गुलाब बैग में ही सूख गया।"

खुश हो गया मनीष- "इसीलिए! इसीलिए हम लड़की लोग के चक्कर में नहीं पड़ते। कभी हमको देखा है लड़की के आगे-पीछे करते? हमारा तो सीधा फंडा है भाई, पैसा जमा करो ओर रंडी...। हर बार नया माल!"

"तो इस बार मुझे भी ले चलो"

"चलो, अगले महीने जा रहे हैं हम लोग।"

***

धनबाद स्टेशन पर उतरकर हमने एक एंबेसडर बुक की सीतारामपुर जाने के लिए। सीतारामपुर सीता और राम के नहीं, वेश्याओं की बस्ती के लिए मशहूर था हमारे कॉलेज में। सड़क से लगभग डेढ़ घंटे का रास्ता था। रात के सन्नाटे में राजपथ पर 80 की स्पीड से दौड़ती कार, हाथ में कोल्डड्रिंक और खिड़की से छनकर आती ठंडी हवा। बस यही जिंदगी है! और शायद आज जिंदगी की सबसे बड़ी खुशी मिल जाए। लेकिन कल्पना और हकीकत में अंतर होता है। गेट में घुसते ही एक अनजान गंध मेरे नाक में समा गई। शराब, गुटका, सिगरेट की सम्मिलित गंध। ग्राहक तो ग्राहक, वेश्याएँ भी यत्र-तत्र गुटका उगल रही थीं। "चुन लो प्रकाश, जिसको चुनना है," उत्साहित होते हुए मनीष बोला और खुद एक लड़की के साथ रूम में बंद हो गया। क्या चुनूँ मैं? क्या कोई सामान हैं ये लड़कियाँ कि चुन लूँ! कुछ लोग तो ऐसे परख रहे थे लड़कियों को, जैसे सब्जी खरीद रहें हों! छू-छू कर गोलाइयाँ नापते, कड़ाई का अनुमान लगाते और हँसते हुए भद्दी गालियाँ देते। कहाँ आ गया हूँ मैं, ईश्वर! ये स्वर्ग है या नरक? बनावटी हँसी, बनावटी सुंदरता। कृत्रिम लेपों से उम्र को छुपाती ये सुंदरियाँ, गंदे इशारे कर ग्राहक फँसातीं। लेकिन इनका ये प्रयास मेरे मन में और विकर्षण पैदा कर गया। "चलोगे क्या हीरो?" एक लड़की पूछ बैठी। "कितना लोगी?" आधे मन से मैंने पूछा। "अरे तू सीधा-सादा दिखता है। दे देना 200, वरना लोग तो यहाँ 300 का वसूलते हैं। जोंक के जैसा चिपट जाते हैं।" पता नहीं क्यों मैं उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। झोपड़ीनुमा घर का एक छोटा-सा कमरा। एक चौकी पर पुराना गद्दा और उस पर एक पुरानी चादर। दो गंदे तकिए, जिन पर तेल के दाग थे। एक कोने में पानी का एक घड़ा और उसकी बगल में गुटके के दाग। ऊपर दीवार में बनी एक अलमारी, जिस पर पेंसिल से कुछ लिखा हुआ था और पाउडर, क्रीम, नेल पॉलिश के कुछ डिब्बे रखे हुए थे। "कपड़े खोल दूँ या तुम खोलोगे?" उसने पूछा था और मेरे

जवाब का इंतजार किए बगैर खुद खोलने लगी। “इतना टाइम नहीं है मेरे पास। जल्दी काम करो और निकलो। ...शरम लगता है तो आया काहे को यहाँ।” मैंने नाम पूछना चाहा था उसका। लेकिन शेक्सपीयर का ये कथन याद आ गया कि नाम में क्या रखा है, गुलाब को चाहे किसी भी नाम से बुलाओ, खुशबू ही देगा। ...खुशबू तो नहीं आई, लेकिन शराब की बदबू मेरे चेहरे से टकराई, भक से। शुष्क व्यवहार, मैला-सा कमरा, तीक्ष्ण बदबू, बेडौल, नग्न शरीर की निर्लज्जता... मेरे कदम खुले आसमान की ओर बढ़ गए। पीछे से औरत की आश्चर्यमिश्रित, कुछ फूहड़ गालियाँ मेरे कानों में उतरने लगीं।

***

बुरे कर्म का बुरा नतीजा होता है। तृतीय वर्ष के परिणाम देखकर सबने ऐसा ही कहा था। जो हमेशा ही प्रथम आता था, आज तीन विषयों में फेल! ये प्रकाश के पाप का फल नहीं तो और क्या है? चलो फर्स्ट नहीं तो सेकंड या थर्ड या कम से कम सभी विषयों में पास तो होना चाहिए था। ये क्या कि एकदम अर्श से फर्श पर! ये भगवान का न्याय है। भगवान का न्याय? भगवान इतने न्यायप्रिय होते तो संसार से कब का पाप मिट चुका होता। और ऐसे भी कौन-सा पाप किया है मैंने? लोग चाहे जो भी कहें, पर मुझे लगने लगा था कि मेरे अंदर नकारात्मकता घुस चुकी है चुपके से। ऐसा क्यों हुआ, कह नहीं सकता। शायद प्रेम में असफलता की वजह से। या फिर प्रबंधन के लोलुप व्यवहार से। या फिर सहपाठियों के अनीति से उत्तीर्ण होने से। या पिताजी के मितव्ययी व्यवहार से। या फिर मैं इंजीनियरिंग के लायक ही नहीं। इस तरह रटकर पास भी हो गए, तो क्या फायदा? प्लेसमेंट की भी कोई व्यवस्था नहीं थी कॉलेज की तरफ से। जो भी हो, मैं धीरे-धीरे नेगेटिव सोच वाला इंसान बनता जा रहा था। आलसी, लक्ष्यहीन, ऊर्जाहीन। अपनी कमियों को जानकर भी उनके साथ क्यों जी रहा था मैं, कह नहीं सकता। इस परिणाम ने मुझे और भी ज्यादा तोड़कर रख दिया। मेरी ‘अपराजेय’ वाली गलतफहमी भी दूर हो गई। मैं भी फेल हो सकता हूँ, ऐसा मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। लेकिन अब ये हकीकत थी।

जिसने एक द्वार बंद किया था, उसने ही दूसरा द्वार खोल दिया। जब दो महीने बाद पूरक परीक्षा की घोषणा हुई, तो सेंटर का नाम देखकर छात्र जैसे पगला ही गए। यह कॉलेज मशहूर था अपनी दरियादिली के लिए। यहाँ लोग खुलेआम चोरी करते थे या कहें कि डकैती करते थे। चंदाखोरों का काम बढ़ गया। एक आपातकालीन मीटिंग बुलाई गई, जिसमें घोषणा की गई- “पूरा सेंटर मैनेज कर लिया गया है। मतलब आप खुलकर नकल कर सकते हैं, लेकिन किताब अंदर ले जाना मना है। आप एक-दूसरे का हेल्प ले सकते हैं, चुटका ले जा सकते हैं या पतला कॉपी वगैरह मोड़कर ले सकते हैं। मतलब शरीर के अंदर जितना छुपा सकते हैं, छुपा लीजिए। प्रिंसिपल के आने की खबर आपको पहले ही दे दी जाएगी। तो आपको सतर्क हो जाना है। बाकी आप लोग खुद ही होशियार हैं।... पैसा? मानकर चलिए कि एक विषय का 300 लगेगा। ज्यादा है? एक बार फेल हो जाओगे तो पता चलेगा कि 300 जरूरी है कि पास होना!”

पास तो कर गया मैं, लेकिन खुद की नजरों में फेल हो गया। क्या था मैं और क्या हो गया हूँ? एक-एक कर सारी बुराइयाँ घुस ही गईं मुझमें। क्या फायदा ऐसी पढ़ाई का?

नंबर लाना और पास करना अलग बात है, ज्ञान प्राप्त करना दूसरी बात। अधूरे ज्ञान वाले ये इंजीनियर्स किस काम के? देश और समाज पर बोझ ही बनेंगे ये लोग। कुछ तो कमी है हमारे तंत्र में कि शिक्षा का मतलब डिग्री और अच्छी नौकरी हो गया। "सच में," अमर ने चिंतित होते हुए कहा- "एक जमाना था, जब इंजीनियर शब्द सुनते ही गर्व की अनुभूति होती थी, अब तो हर घर में एक इंजीनियर मिलेगा। कहीं-कहीं तो दो या तीन। देश में इंजीनियरिंग कॉलेज तो कुकुरमुत्ते की तरह उग गए, लेकिन उनकी गुणवत्ता की बात कोई नहीं करता। बस एक दुकान की तरह कहीं भी एक बिल्डिंग खड़ा कर दिया, दो-चार शिक्षक ले आए और शुरू हो गया व्यवसाय। छात्र भी खुश, पैरेंट्स भी खुश कि बेटा इंजीनियर बनेगा और कॉलेज भी खुश।"

"मुझे लगता है कि मुझे साहित्य के क्षेत्र में जाना चाहिए था, लेकिन सामाजिक दबाव की वजह से विज्ञान के क्षेत्र में आ गया। एक प्रकार का माइंड सेट हो गया है लोगों का कि तेज विद्यार्थियों को विज्ञान ही लेना चाहिए। इसी मानसिकता का शिकार हो गया मैं।"

"अब इंजीनियरिंग करके तुम दूसरी फील्ड में जाओगे, तो भी लोग उँगली उठाएँगे।"

"समाज की आवाज सुनने वाला सुखी तो हो सकता है, लेकिन खुश वही रहता है जो दिल की आवाज सुनता है। चुनाव आप पर है।"

***

समय का घूमता पहिया आखिरकार उस पड़ाव पर आ पहुँचा, जिसे विद्यार्थी और गृहस्थ जीवन का संधिकाल कहते हैं। जिस कॉलेज और पढ़ाई को हमेशा गरिआया, उसका आज अंतिम दिन था। यादें हमेशा मधुर होती हैं, चाहे अनुभव कड़वे हों या मीठे। एक, एक कर पाँच साल का संघर्ष याद आता गया। कोर्ट-कचहरी, आंदोलन, तोड़फोड़, मारपीट, छोकरीबाजी, लफुआगीरी, गुंडागर्दी, क्या नहीं था इस कहानी में। जान के दुश्मन बने लड़के आज एक-दूसरे से गले मिल रहे थे रो-रोकर। क्या कोई यकीन कर सकता है कि सालभर पहले शिवशंकर और अजित के बीच जबरदस्त मारपीट हुई थी! एक वर्ष पूर्व क्रिकेट का एक फ्रेंडली मैच चल रहा था। शिवशंकर जी इन चीजों से दूर रहते थे, लेकिन आज उनका मूड हुआ कि क्रिकेट खेलें। मूड तो ठीक है, लेकिन जल्दी आउट हो गए। उन्हें लगा कि उन्हें बेईमानी से आउट दिया गया है। तो साहब मुँह फुलाकर बैठ गए। इधर अजित आदत से लाचार। इन्हें बैटिंग भी पहले चाहिए, बॉलिंग भी पहले चाहिए और फील्डिंग भी अपनी मर्जी से करेंगे। एक खिलाड़ी से उलझ गए कि कीपिंग मैं ही करूँगा। बोल दिया कि बाउंड्री पर फील्डिंग हम नहीं करेंगे। शिवशंकर जी ठहरे हॉस्टल के सरकार। अनेक युद्ध कर चक्रवर्ती सम्राट बन चुके थे। उनका ये हक था कि वो अन्याय को रोकें। मुँह फुलाए हुए वो सारा अनर्थ देख रहे थे। झट-से दीवार से नीचे कूद गए और अजित की गरदन पकड़ ली- "बहुत देर से देख रहे हैं तुमको। सब रंगबाजी झाड़ देंगे यहीं पर।" अब कोई अकेले में किसी को गाली दे-दे तो अलग बात है, समाज के बीच में तो अपनी इज्जत बचानी पड़ती है। हल्के विरोध के स्वर में अजित बोला- "तुम काहे बीच में टाँग घुसेड़ रहे हो। अपना काम करो न!" बस फिर क्या था, शिवशंकर जी ने एक बैट उठाया और अजित को बॉल समझकर मारने लगे। जल्दी आउट होने के कारण उनकी जो ख्वाहिश अधूरी रह गई थी, अजित को मारकर पूरी कर ली। ताबड़तोड़

चौके-छक्के लगा डाले। अजित बस कराहते हुए "ठीक नहीं होगा" और "भुगतोगे, याद रखना" मुँह से निकालते रहे। और आज देखिए कि दोनों साथ में फोटो खिंचवा रहे हैं। समय की बात।

ये समय की ही बात है कि आज समय भागता हुआ-सा लग रहा है। सबने हमेशा बस यही चाहा था कि किसी तरह यहाँ से डिग्री मिल जाए और जान छूटे। लेकिन आज लग रहा था कि काश, ये वक्त थम जाए। कुछ देर और दोस्तों के साथ। फिर न जाने तुम कहाँ और हम कहाँ। लगता है आज बातों की कमी हो गई है। अपने-अपने विचारों में डूबे सब छत निहार रहे हैं। बड़-बड़ करने वाले अनीस को भी कोई बात नहीं मिल रही है। गला खँखारते हुए अजय बोला- "कितने बजे की गाड़ी है तुम्हारी झा जी?" "दस बजे।" और फिर एक चुप्पी। "अरे छोड़ो यार ये मनहूसियत! सब ऐसे बैठे हैं जैसे कोई मर गया है। जिंदगीभर क्या कॉलेज में ही रहोगे? पाँच साल तो साथ रहे ही। अब कितना रहोगे?"

"सही बात! हम लोगों ने सैकड़ों दिन और सैकड़ों रात इसी छत के नीचे साथ-साथ हँसते हुए बिताए हैं, तो आज भी हँसते हुए एक-दूसरे से विदा होंगे।"

"हँसते हुए क्या खाक! खाली हाथ घर जा रहे हैं, बिना नौकरी के। कितना अच्छा होता कि सबका प्लेसमेंट हो जाता। पाँच वर्ष की तपस्या सफल हो जाती।"

"तपस्या?... अगर सचमुच तपस्या किए हो तो... खैर, आज एक सवाल सबसे। जिंदगी की सबसे बड़ी भूल और सबसे बड़ी ख्वाहिश। ब्रजेश, तुम शुरू करो।"

ब्रजेश- "इस कॉलेज में आना ही मेरी सबसे बड़ी भूल है... और ख्वाहिश? पावर चाहिए हमको। पावर लालबत्ती वाला।"

अमर- "भूल... देखा जाए तो कुछ भी नहीं। जो बीत गई सो बात गई। जो होता है अच्छा ही होता है। जहाँ तक ख्वाहिश की बात है, तो 'जियो और जीने दो' यही मेरा आदर्श है। सब खुशहाल रहें यही चाहत है।"

मैं- "छोड़ो ये बकवास। क्या भूल और क्या ख्वाहिश! हमको बस नौकरी चाहिए। नौकरी कोई भी। गैंगमैन ट्रैकमैन, क्लर्क, चपरासी, कुछ भी! बस सरकारी होना चाहिए।"

अजय- "बस करो भाई, इतना टेंशन क्यों लेते हो? अभी तो कॉलेज से निकले ही हो। कुछ दिन एंजॉए कर लो लाइफ। फिर तो जिंदगीभर बैल की तरह खटना ही है।"

जयकिशन- "मुझे ये नहीं समझ में आता कि लोग सरकारी नौकरी को इतना महत्व क्यों देते हैं? सरकारी नौकरी में कोई रोमांच नहीं है। वही बँधा-बँधाया सा रुटीन लाइफ। नौ से छह काम करो। घर आओ, सब्जी लाओ, थोड़ा देर टीवी देखो, फिर सो जाओ। पूरी जिंदगी..."

मैं- "स्थायित्व। जॉब सिक्योरिटी।"

जयकिशन- "डरपोक हैं वो लोग, जो भविष्य से डरते हैं। अरे, हिम्मत रखो खतरा उठाने का। सोचो अगर सब कोई तुम्हारे जैसा डरकर कोई छोटा-मोटा नौकरी कर ले, तो बिजनेस कौन करेगा? बिजनेस से ही देश की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। मालिक बनो मालिक, नौकर क्यों बनना चाहते हो! खासकर तुम्हारे जैसा टैलेंटेड आदमी इस तरह की बात करता है, तो दुख होता है।"

मैं- "हाँ, मैं डरपोक हूँ। मुझे बस जीवन-यापन का एक जरिया चाहिए। कोई बहुत बड़ा अरमान नहीं है मेरा।"

अमर- “देखो प्रकाश, इंसान को सिर्फ दाल-रोटी ही नहीं चाहिए, कुछ और भी चाहिए। बात सिर्फ पेट की होती, तो इतना पैसा खर्च करके, पाँच साल बर्बाद करके पढ़ाई क्यों किए? पेट तो तुम घर बैठ के भी पाल सकते हो। जब तक इंसान अपनी प्रतिभा से न्याय नहीं करता, तब तक वो खुश नहीं हो सकता।”

मै- “मेरे में कोई प्रतिभा नहीं है।”

जयकिशन- “अबे तालाब का सड़ा हुआ पानी है तुम। देह-चोर, कामचोर, आलसी, डरपोक, कमजोर। कीड़ा जैसा रहने का आदत हो गया है तुमको, वही अच्छा लगता है।

मैं- “शुक्रिया इतनी तारीफ के लिए। और कुछ?”

जयकिशन- “मेरा सर!”

***

तुम क्या जानो प्यार क्या है!

"तो अब आगे का क्या सोच रहे हो?" शर्ट खूँटी पर टाँगते हुए पिताजी ने पूछा- "घर की स्थिति देख ही रहे हो। पेंशन के पैसे से तुम्हारी पढ़ाई पूरी करवा दी मैंने। अब मेरा कुछ बोझ हल्का करो।" पिताजी जबसे रिटायर हुए हैं, तबसे बच्चों से बात करने लगे हैं। वरना पहले तो सीधे मुँह बात करते डर लगता था हम भाई-बहनों को। बुढ़ापे में शायद इंसान को अकेलापन ज्यादा खलता है। जो इंसान हमेशा दूर रहा परिवार की गतिविधियों से, वो आज परिवार में घुलना चाहता है, बैठना चाहता है, हँसना चाहता है। लेकिन समय का खेल देखिए, अब मैं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। अच्छी नहीं लगती उनकी टोका-टोकी। झुँझला जाता हूँ। टीवी पर नजरें गड़ाए मैं सोच में पड़ गया। मैंने गला खँखारकर एक संक्षिप्त-सा उत्तर दिया- "देखते हैं।"

जब तक इंसान पढ़ाई करता है, तब तक उसके पास एक बहाना रहता है कि अभी तो पढ़ाई कर रहे हैं। लेकिन पढ़ाई खत्म करते ही इस प्रश्न "क्या कर रहे हो" का उत्तर देना मुश्किल हो जाता है। मैंने एक नया बहाना निकाला- "अभी तो आर्थिक मंदी का दौर चल रहा है। कहीं जॉब नहीं है।" कुछ हद तक ये सत्य भी था। कोई कंपनी नहीं आई प्लेसमेंट के लिए। कुछ लड़के बेंगलुरु चले बोरिया-बिस्तर बाँधकर, तो कुछ दिल्ली। जिसका कोई नहीं उसकी दिल्ली। कुछ लड़के पैरवी-पहुँच के दम पर इधर-उधर सेट हो गए। तो कुछ लड़के सरकारी नौकरी की तैयारी में लग गए। मैं भी इसी अंतिम ग्रुप का हिस्सा था। लेकिन अंतर ये था कि जहाँ अन्य लड़के नियमतः इंजीनियरिंग सर्विसेज की तैयारी कर रहे थे, मैं एक साथ चार नावों की सवारी कर रहा था। कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं। बस किस्मत जहाँ ले जाए।

लेकिन किस्मत ने शायद कुछ और सोच रखा था मेरे लिए। उस दिन जब मैं अपने ख्यालों में डूबा कुछ सोच रहा था, तभी माँ ने कुछ फोटो सरका दी थी मेरे आगे- "ये देखो, मैं बोकारो गई थी न, वहाँ की कुछ तस्वीरें हैं।" मैं आधे मन से फोटो देखता जाता और माँ उन फोटो के बारे में बताती जातीं। "ये बालापुरी का है। तुम्हारे मामा और मामी गए थे इस साल फरवरी में..."

"ये नंदन जहाँ काम करता है, उसके ऑफिस का है।... हाँ, खूब मोटा हो गया है।... अच्छा पैसा कमा रहा है... बीस हजार सैलरी है और कंपनी का गाड़ी और घर भी मिला है।"

(ईश्वर! अब और मत जलाओ।) नंदन मुझसे बहुत छोटा है उम्र में और ठाठ देखिए इसके।

"ये हम लोग गए थे घूमने, वहाँ का है।"

सबसे आखिर में एक लड़की की तस्वीर थी। हाथ में डायरी लिए किसी स्टुडियो की फोटो थी शायद। मैंने जानना चाहा।

"तुम्हारी मामी ने दी है। उनकी बहन की लड़की है।" मैं इतना भी बेवकूफ नहीं था कि उनके इरादे न समझ सकूँ। लेकिन खुद को अनजान दिखाना चाहता था। वैसे भी, कोई लड़की जब स्टूडियो में पूरी तैयार होकर फोटो खिंचवाए, तो उसका मकसद एक ही होता है। मैंने उस फोटो को दो सेकंड भी नहीं निहारा, क्योंकि माँ के सामने किसी लड़की की फोटो देखना एकदम अजीब अनुभव था। मैंने उसे भी सभी फोटो के साथ चुपचाप रख दिया।

माँ ने खामोशी तोड़ी- "मामी तुम्हारे पीछे पड़ गई हैं। उनकी बहन को इंजीनियर दामाद चाहिए (इंजीनियर! मैं नफरत करता हूँ इस शब्द से)।"

"लेकिन माँ, आपको तो मालूम है कि मेरी क्या परिस्थिति है अभी। शादी के बारे में अभी मैं सोच भी नहीं सकता।"

"अभी नहीं। जब तुम सेट हो जाओगे, तभी होगी शादी। अभी केवल छेका (सगाई) होगा। शादी छह महीना, सालभर के बाद। ठीक है!"

शाम को एकांत पाते ही मेरे जासूसी दिमाग ने खोजबीन शुरू की। कहाँ रखी होगी माँ ने तस्वीर। शायद बक्से में, या उनके निजी बैग में या अलमारी में। आखिरकार मुझे मिल ही गया मेरा खजाना। अलमारी के एक डायरी में रखी वो तस्वीर लेकर चुपचाप अपने कमरे में चला गया। सिर से पाँव तक त्रुटिहीन। क्या लंबाई है, क्या बाल हैं, पतली कमर, हाथों की पतली, लंबी उँगलियाँ, तीखे नैन-नक्श, चिकने-गोरे हाथ। मैंने खुद को शाबाशी दी- यू आर लकी प्रकाश!

अब ये दैनिक कार्यक्रम बन गया था मेरा। पढ़ाई करना और मौका पाते ही तस्वीर देखना और फिर वापस उसी जगह पर रख देना। एक ही तस्वीर को बार-बार देखना। पता नहीं, हर बार एक नयापन-सा लगता था। अब तो उसके ही चर्चे सुनना अच्छा लगता था। माँ जब किसी को उसकी तस्वीर दिखातीं, तो मैं छुपकर सुनता। मेरे कान उसकी तारीफ सुनने के लिए बेताब रहते। जब कोई ये कहता कि थोड़ी दुबली है या इसकी आँखें छोटी हैं, तो मैं चाहता कि उसे एक थप्पड़ दूँ और कहूँ- "ठीक से देख, अंधा कहीं का!"

मेरा पहला साक्षात्कार किसी कंपनी में नहीं हुआ, बल्कि मेरे घर पर हुआ। मेरे भावी

श्वसुर देखने तो आए थे मुझे, लेकिन देख रहे थे खिड़की के बाहर। उनके पुत्र भी कम शर्मीले नहीं थे। जमीन में गड़ी नजर ऊपर नहीं उठी। लेकिन उनके भाई जो शायद विशेष रूप से इस काम के लिए बुलाए गए थे, कुछ सोचते हुए सोफे में धँस गए। बिना किसी औपचारिकता के उन्होंने जो पहला प्रश्न किया वो इस प्रकार था (अँग्रेजी में)- "वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग का क्या स्कोप है?"

(कोई स्कोप नहीं है। कृपया कुछ और पूछें।)

टूटी-फूटी अँग्रेजी में मैंने जवाब दिया- "अभी इलेक्ट्रॉनिक्स का डिमांड थोड़ा कम हो गया है, लेकिन एनटीपीसी, बीएसएनएल और रेलवे में सेक्शन इंजीनियर का फॉर्म भरा है मैंने।"

"प्राइवेट कंपनी में ट्राई नहीं किया?"

"प्राइवेट मैं करना नहीं चाहता। अगर कहीं नहीं हुआ, तो देखा जाएगा।"

"लेकिन मैंने सुना है कि प्राइवेट में ज्यादा पैसा है।" फिर मेरे पिताजी की ओर मुखातिब हुए- "आप यकीन नहीं करेंगे भाई साहब, आजकल कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक्स वालों को 35-40 लाख का पैकेज मिल रहा है। मेरे ही साला का एक बेटा है, देखिए, अगले महीने अमेरिका जा रहा है। तीन नौकरी बदल चुका है अब तक। कहता है, जब टैलेंट है तो एक जगह क्यों चिपककर रहना।"

"देखिए, हर किसी की अपनी योग्यता होती है। किसी एक की तुलना दूसरे से नहीं की जा सकती।" धीरे से मैंने कहा।

"मैं तुलना नहीं कर रहा और माफ कीजिए, अगर आपको बुरा लगा हो। लेकिन एक बात आप जान जाइए कि आजकल जो दिखता है वही बिकता है। आप पढ़ने में कितने ही तेज हों, लेकिन अगर आप व्यावहारिक नहीं हैं, तो आप आगे नहीं बढ़ सकते।" इतनी देर बाद लड़की के पिता ने मुँह खोला। नजर अब भी उनकी खिड़की पर थी- "लगता है बहुत कम बोलते हैं आप। पढ़ने में तो सुने हैं कि आप बहुत तेज हैं। बस थोड़ा-सा एक्टिव बन जाइए। आजकल अँग्रेजी का जमाना है और आपकी अँग्रेजी थोड़ी वीक है। मेहनत करना पड़ेगा।" (अँग्रेज चले गए लेकिन अँग्रेजियत छोड़ गए। हिंदी बोलना क्या पिछड़ेपन की निशानी है? हिंदी जानते हुए भी अँग्रेजी में डींग हाँकना अगर सभ्यता की निशानी है, तो मैं असभ्य हूँ।) लड़की का भाई जो अब तक जमीन पर नजरें गड़ाए था, अब छत निहार रहा था और बिस्कुट ऐसे तोड़ रहा था, जैसे कोई एहसान कर रहा हो खाकर।

इतने खराब साक्षात्कार के बाद अच्छे परिणाम की उम्मीद करना बेमानी था। मैं धीरे-धीरे इस सदमे से उबर रहा था, ये सोचकर कि जो अपना था ही नहीं उसका क्या अफसोस! लेकिन किस्मत लिखने वाले ने कुछ और सोच रखा था शायद। काफी हाँ-ना के बाद आखिरकार हमारे छेका का दिन तय हो ही गया। ऐसा हमारे परिवार में पहली बार हो रहा था कि लड़का और लड़की शादी से पहले मिल रहे थे। ये भी पहली बार हो रहा था कि लड़का और लड़की एक-दूसरे को अँगूठी पहनाने वाले थे। मेरे पिता जैसे परंपरावादी व्यक्ति ने समय की बदलती माँग को स्वीकार कर लिया था और हम लोग आखिरकार अँगूठी रस्म के लिए इकट्ठा हो गए।

बोकारो के राम मंदिर में दोनों परिवारों का मिलन हुआ- शायद ये सोचकर कि

भगवान के सान्निध्य में हर काम शुभ-शुभ होगा। औरतों के पास जहाँ भगवान जी थे खुश होने के लिए, पुरुषों के पास गप्पें थीं हाँकने के लिए और स्त्रियाँ थीं ताड़ने के लिए। लेकिन मेरे दिल और दिमाग उस पल के इंतजार में बेसब्र हो रहे थे जो आने वाला था। बस कुछ पल और, फिर मैं अपनी कल्पना को हकीकत बनते देख सकूँगा। और वो पल भी आ ही गया, जब स्त्रियों के समूह में एक लंबी-सी लड़की, नारंगी साड़ी पहने, सिर झुकाए, पायल बजाते अवतरित हुई। एक खामोशी फैल गई कमरे में। मेरी नजरें फर्श पर गड़ी थीं, लेकिन ऐसा आभास हुआ कि वो भी नजर झुकाए सवालों का इंतजार कर रही थी। बीच-बीच में रुमाल से नाक पोंछ लेती थी। "रो रही हो क्या?" दीदी ने पूछा था। "नहीं-नहीं, धूप लग गया है। खूब घूमी है धूप में, इसलिए नाक बह रहा है।" जवाब उसकी माँ ने दिया। फिर कुछ ऐसे सवाल मेरे घरवालों ने पूछे जिनके जवाब शायद उन्हें पता थे। जैसे, "नाम क्या है?", "कहाँ तक पढ़ी हो?", "क्या-क्या कर लेती हो", "सिलाई-कढ़ाई आता है?" आदि-आदि। मामी ने, जो इस रिश्ते की मध्यस्थ थीं, एलान किया- "देखिए, इसे झूठी बड़ाई मत समझिए, लेकिन सीमा को साक्षात सरस्वती का वरदान है, सिलाई-कढ़ाई जानती है, साज-सज्जा, गीत-संगीत... और तो और, कंप्यूटर भी सीखी है। बात-व्यवहार में कुशल है, आज्ञाकारी है, समझ लीजिए कि दोनों की जोड़ी एकदम बेस्ट जोड़ी है। छोटूजी (मेरा घरेलू नाम) भी रूप-गुण, हर चीज से संपन्न हैं। पढ़ने में तेज हैं, तो आज नहीं तो कल नौकरी का भी उपाय हो ही जाएगा। अब आगे भगवान की मर्जी होगी, तो सब बढ़िया से हो जाएगा।"

हाथ में अँगूठी लिए दोनों इस दुविधा में खड़े थे कि पहले कौन पहनाएगा। पीछे "लजा क्यों रहे हो, पहनाओ, पहनाओ" की आवाज सुनकर मैंने अपना हाथ बढ़ाया। उसने अपने दाएँ हाथ की उँगली आगे कर दी। "बाएँ हाथ की उँगली में पहनाते हैं ना," झिझक दूर करने की कोशिश थी मेरी। औरतें हँसीं- "बहुत अनुभवी बाड़न पंडिजी ऐसन लागता।" मेहंदी लगी उन सुंदर उँगलियों को छूकर एक करंट-सा लगा मेरे हाथ में। खुद को संयत करते हुए झट से मैं पीछे हट गया। उसने मेरी उँगली को बिना पकड़े इस तरह अँगूठी ठूँस दी, जैसे सिर का कोई बोझ उतार रही हो। उसके बाद वही फोटो खींचने वाला कार्यक्रम। फोटो खींचने और खिंचवाने, दोनों से हमेशा एलर्जी रही है मुझे। लेकिन आज तो कोई बहाना नहीं चलेगा। ऐसे नहीं ऐसे... थोड़ा-सा स्माइल... थोड़ा और नजदीक आइए आप लोग... अरे इतना शरमा क्यूँ रहे हैं आप लोग! हल्का तिरछा... एक बैठकर हो जाए... हाँ-हाँ, सब कोई साथ में आइए। ग्रुप फोटो। लड़कों के पास नया-नया मोबाइल है हाई रिजॉल्युशन वाला। सभी फोटोग्राफर बने हुए हैं- "भइया, आप सीधे तनकर खड़े हो जाइए, इतना विनम्र क्यों बन रहे हैं!" या अल्लाह ये सार्वजनिक बेइज्जती!

***

गर्मी की एक सुस्त, अलसाई दोपहर में सीने पर किताब रखे लेटा एक युवक। नजरें छत के किसी अज्ञात लक्ष्य पर टिकी हुईं। दिमाग उन पलों को याद करते हुए, जो दो दिन पूर्व उसने गुजारे थे। वो क्षणिक स्पर्श हथेलियों का, नजरों का उलझ जाना एक पल के लिए, वो खुशबू साड़ी और केशों की, बार-बार जुल्फों को कान पर चढ़ाना। फोन की घंटी

से मेरी तंद्रा भंग हुई। देखा तो विशाल था, मेरा ममेरा भाई।

"का हो रहा है छोटू भैया?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं, बस ऐसे ही पढ़ाई कर रहा था।"

"अरे, कितना पढ़िएगा महाराज! थोड़ा चैन लेने दीजिए किताब सब को।"

"पढ़ नहीं रहे हैं, सिर्फ किताब खुला है। आजकल पढ़ने में मन नहीं लगता है।"

"कहिए तो मन लगाने वाला भेज दें?"

"क्या मतलब?"

"आप हाँ तो करिए..."

"मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।" उसके बाद जो आवाज मेरे कानों में आई, वो एक लड़की की थी। घबराहट में मेरी आवाज लड़खड़ा गई- "...क...कौन...आप कौन?"

"इतनी जल्दी भूल गए! दो दिन पहले ही अँगूठी पहनाया था, आज भूल गए?"

"ओह आप... नहीं भूले नहीं हैं... बस विश्वास नहीं हो रहा है कि आप हैं।"

"क्यों, और भी लड़कियों के फोन आते हैं क्या?"

गजब का आत्मविश्वास था उसकी आवाज में। बेचैन हृदय की मुश्किल कम नहीं हुई, और बढ़ गई। अब तक तो सिर्फ आँख, नाक और त्वचा ने उसकी खूबसूरती को समझा था। अब कान भी उसका प्रशंसक बन गया। ये क्या किया तुमने प्रिये, एक प्यासे की प्यास और बढ़ा दी थोड़ा-सा मधुपान कराकर। क्या मैं फिर वो आवाज सुन सकूँगा? शायद नहीं। एक लड़की का विवाहपूर्व बातचीत करना अच्छा नहीं माना जाता। उसने सिर्फ मेरी आवाज सुनने के लिए फोन किया होगा। या फिर ये देखने के लिए कि मैं कैसे बात करता हूँ। लगता नहीं कि वो दुबारा फोन करेगी।

लेकिन गलत था मेरा अनुमान। दूसरे दिन शाम को एक नए नंबर से कॉल आया। और इस बार लंबी बातचीत हुई हमारे बीच। लड़की से बात करना एकदम नया अनुभव था मेरे लिए। कॉलेज में कई लड़कों को देखा था घंटों फोन पर बतियाते हुए। तब मैं कहा करता था- "क्या ये लोग बोर नहीं हो जाते बात करते हुए... नहीं, मैं कभी नहीं करूँगा ये पागलपनी।" लेकिन आज मुझे सत्य का ज्ञान हुआ। लड़की से बात करना ही जीवन का सबसे बड़ा सुख है। लगता था, ये पल खत्म ही न हों। उसे क्या खाना अच्छा लगता है, उसे कौन-सी जगह पसंद है, उसकी कितनी मौसियाँ हैं, उसकी कितनी मामियाँ हैं, उसके कितने चाचा हैं, सब जान लेना चाहा था मैंने। उसकी वाकपटुता की वजह से मेरा काम आसान हो गया था। मैं दो सेकंड के सवाल करता था और वह तीन मिनट के उत्तर देती थी। मैं बस 'हाँ', 'हूँ' या 'अच्छा' या 'ओके' करता जाता था।

अब ये नित्य का कार्यक्रम बन गया था। लोगों से नजरें बचाकर कॉल कर देना। पढ़ाई भी करता तो सामने मोबाइल रखकर। क्या पता, कब कॉल आ जाए या कोई मैसेज ही आ जाए। उसने एक प्रस्ताव रखा- "क्यों न हम लोग एक ही कंपनी का सिम रखें। इससे हम कम पैसे में ज्यादा बातें कर सकेंगे।"

"लेकिन ज्यादा बात करूँगा, तो पढ़ाई कब करूँगा?" मैंने हल्का-सा प्रतिवाद किया।

"मुझे मालूम है, मैं आपको तंग नहीं करूँगी। फिर भी अगर आप नया सिम ले लेते तो अच्छा होता।"

"जो हुकुम मेरे आका! और कोई फरमाइश?"

“हाँ, जब मैं आरा वापस जाऊँगी, तो आपको मेरी दो बहनों से बात करनी पड़ेगी। एक मेरे चाचा की लड़की है, दूसरी फुआ की लड़की है।”

“मुझसे नहीं होगा। तुम्हें मालूम है, मैं कितना घबरा जाता हूँ लड़कियों से बात करने में...”

“कहाँ घबराते हैं! इतना अच्छा बात करते हैं आप। थोड़ा-सा मेरे लिए..”

“नहीं, क्या बात करूँगा मैं? मुझे माफ करो।”

“प्लीज, प्लीज, प्लीज...”

इतनी जिद के बाद तो भगवान भी मान जाते, मैं माना तो क्या माना।

***

“हाय जीजाजी! मैं मंजू”

“हाय जीजाजी! मैं अंशु।”

“हाय जीजाजी! मैं पूनम।”

“हाय जीजाजी! मैं ज्योति।”

ओह गॉड! कितनी सालियाँ हैं मेरी। कहाँ मैं कम बोलने वाला इंसान और कहाँ मुझे इतने लोगों से बकर-बकर करनी पड़ रही है।

“आपने तो कहा था कि सिर्फ दो जनों से बात करनी है, यहाँ तो पूरी कौरव की फौज खड़ी है।” खीझते हुए मैंने कहा। “धीरे बोलिए। देखिए, सबसे पहले जिससे आपने बात किया वो मेरे छोटे पापा (अपने चाचा को छोटे पापा कहती थी वो) की लड़की थी। सबसे करीब है वो मेरे। उसके बाद जिससे बात किया वो मेरे फुआ की लड़की थी। मालूम है, मेरी फुआ भी यही रहती हैं थोड़ी दूर पर और छोटे पापा भी यही कोई दो किलोमीटर की दूरी पर रहते हैं।... हाँ, यही तो संयोग है कि हम लोग हमेशा साथ रहे। वी आर सो लकी!... उसके बाद जिसने बात किया वो मेरी छोटी मौसी की लड़की है। घूमने आई है यहाँ, बक्सर में रहती है।... उसके बाद... उसके बाद...।”

“और ये मोबाइल का जो इतना बिल उठ रहा है... फ्री का है क्या?”

“हाँ, फ्री का है। पता है, 99 का पैक भराया है मैंने। इसमें वोडाफोन टू वोडाफोन फ्री में बात कर सकते हैं पूरे एक महीने के लिए।” चहकते हुए उसने बताया।

ये फ्री का माल मेरा काल साबित हुआ। और ज्यादा बातें होने लगीं। बस रात का इंतजार। खाना खाकर अपने बेड पर जाना, लेटकर फोन का इंतजार करना, चादर में मुँह छिपाकर धीरे-धीरे घंटों बातें करना। रात की शांति में जब पूरा आस-पड़ोस नींद के आगोश में हो, जब खामोशियाँ भी शोर करने लगें इतनी नीरवता हो, ऐसे में एक लड़की से निश्चिंतता से बात करना। मदहोश कर देता था वो पल। एक पल के लिए लगता, जैसे वो मेरे एकदम करीब हो, और उसकी गर्म साँसें मेरे गालों को सहला रही हैं। शरीर को ऐंठते हुए एक अँगड़ाई ली उसने।

“जानू, दर्द हो रहा है पीठ में। दबा दोगे?” लड़खड़ाती आवाज मेरे कानों से टकराई। धक-से कर गया मेरा दिल।

“इसके लिए मुझे तुम्हारे पास आना पड़ेगा।”

“तो आ जाओ ना! आज आपकी बहुत जरूरत महसूस हो रही है।”

“मैं तुम्हारे चादर में आ जाऊँ?” मैंने पूछा।
“हूँ।”
“लो आ गया। अब कैसा लग रहा है?”
“बहुत अच्छा। लग रहा है जैसे आप मेरी बगल में लेटे हैं, और...”
“और क्या?”
“मैं... आपके सीने पर लेटी हूँ और आपके बाल सहला रही हूँ।”
“मत करो ऐसी रोमांटिक बातें। कुछ-कुछ हो रहा है मेरे अंदर।”
“पता नहीं क्यों आज मेरा मन बहुत रोमांटिक हो रहा है।” बहकते हुए कहा उसने।
“तो एक किस दे दो।”
“चुम्म...”
“एक होंठों पर...”
“चुम्म...चुम्म...चुम्म...”
“एक सीने पर...”
“चुम्म...चुम्म...चुम्म...”
“पेट पर...”
“चुम्म...चुम्म...”
“थोड़ा और नीचे...”

फोन कट। कल्पना लोक में विचरते प्राणी को जैसे धरातल पर पटक दिया गया हो। अचानक से मैं उस रोमांटिक दुनिया से बाहर आ गया। मुझे लगा जैसे फोन खुद-ब-खुद कट गया है। इसलिए मैंने उसे फोन लगाया। लेकिन उसने न ही फोन उठाया, न ही कोई जवाब दिया। काफी प्रयासों के बाद भी जब बात न हो सकी, तो समझ गया कि वह मेरी अश्लील बातों से आहत हुई है। अगले दिन सुबह उसका एक मैसेज आया- “आप सभी लड़के एक जैसे होते हैं। गंदे। आई हेट यू।” आश्चर्य है, शुरुआत उसने की और इल्जाम मुझ पर लगा रही है। खैर, मैंने अपनी सीमाएँ तय कीं। गंदी बातें अब और नहीं।

***

पिताजी आजकल नाराज-से रहते थे मुझसे। मुँह फुलाए, भौंहें टेढ़ी किए जब मेरी ओर ताकते, तो डर-सा लगता। कहते तो वे कुछ नहीं थे लेकिन मुझे ऐसा लगा, शायद वो कुछ मन में दबाए हुए हैं। शायद मेरी प्रेम-कहानी का आभास हो गया था उन्हें। उनकी चुप्पी कहीं ज्वालामुखी बनकर न फट जाए! और एक रात ये अनिष्ट भी हो ही गया। रात को बाथरूम से लौटते वक्त उन्हें मेरे कमरे से खुसर-पुसर सुनायी दी। बस, किसी जिन्न की तरह अचानक मेरे बेड के सामने अवतरित होकर जो जुबानी अस्त्र चलाना शुरू किया कि मेरे कान सुन्न हो गए। “पगला गया है तुम? इ रात के बारह बजे किससे बात कर रहा था? एकदम दीवाना हो गया है ये लड़का। कई दिन से देख रहे हैं, रातभर भुनुर-भुनुर।” उनकी आवाज शायद फोन की दूसरी ओर चली गई थी, इसलिए सीमा ने फोन काट दिया था, लेकिन पिताजी का भाषण अभी खत्म नहीं हुआ था। उनकी आवाज से घर के अन्य सदस्य भी जग गए थे। इसलिए पिताजी और उग्र होकर प्रहार करने लगे- “घर में आज तक कोई इतना आवारा नहीं हुआ, जितना ये लड़का हो गया है। एकदम निर्ल्लज होकर

रात-रात भर बात करता है। भविष्य का चिंता है इसको? इतना दिन हो गया है पढ़ाई पूरी किए हुए, कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिला अब तक। न पढ़ाई ही मन से करता है, न ही काम में मन लगता है इसको। बस, इसको लग रहा है कि यही जिंदगी हैं। खाना, पीना और मौज करना। कब तक चलेगा ऐसे? ये अपना जिंदगी तो बर्बाद कर ही रहा है, सामने वाला का जिंदगी भी खराब कर रहा है।" मैं चुपचाप उठा और दूसरे रूम में आकर औंधे लेट गया। अंदर क्रोध की अग्नि धधक रही थी, लेकिन चुप रह जाना मेरी मजबूरी थी। दूसरे रूम से अब भी पिताजी की आवाज रह-रह कर आ रही थी, जो माता के हस्तक्षेप के बाद थोड़ी मद्धिम हो गई थी।

दूसरे दिन माँ की उपस्थिति में भाभी ने मेरा समर्थन किया- "पापाजी कुछ ज्यादा ही बोल गए कल। जवान लड़का से कैसे बात करनी चाहिए ये भी नहीं सोचे। हमको अपमानित जैसा महसूस हो रहा था।"

माँ- "हाँ, थोड़े तुनकमिजाजी हैं, लेकिन बात सही करते हैं।" धीरे से मैंने अपना पक्ष रखा- "कौन क्या सोचता है ये उसकी मर्जी, लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं कुछ गलत नहीं कर रहा। आज नहीं तो कल मेरी शादी होने वाली है उससे। मैं किसी की जिंदगी से खिलवाड़ नहीं कर रहा हूँ।" भाभी मेरी बातों से सहमत थीं- "और क्या! आजकल तो हर कोई बात करता है शादी से पहले। आप तो फिर भी बहुत संयम से रहते हैं, कई लोग तो मिल भी लेते हैं शादी से पहले। एक तरह से ये अच्छा ही है एक-दूसरे को जानने-समझने के लिए।" माँ ने कुछ कहा तो नहीं, किंतु पिताजी तक ये संदेश जरूर पहुँचा दिया था। उनका पुत्र अब हाथों से निकल चुका है। अपने प्रेम और विवाह की बातें करता है। उसे टोकना अब ठीक नहीं।

***

"कैसा रहा एग्जाम, बीएसएनएल का था न?" उत्साहभरे लहजे में पूछा उसने।

"एकदम खराब। कोई उम्मीद नहीं है।" मैंने उसके उत्साह पर ठंडा पानी फेर दिया।

"कोई बात नहीं।... सफर कैसा रहा, दोस्त के यहाँ रुके हैं?"

"मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ सीमा। तुम मुझे भूल जाओ। तुम इस रिश्ते के लिए मना कर दो।"

"क्या फालतू बात कर रहे हैं आप? क्यों, किसलिए?"

"अब क्या समझाऊँ तुम्हें। कभी-कभी लगता है कि नौकरी शायद नहीं मिलेगी मुझे। कितनी उम्मीदें हैं तुम्हारे घरवालों की मुझसे। डर लगता है, मैं इन उम्मीदों पर खरा उतर पाऊँगा या नहीं। उम्मीदों के बोझ तले दबकर मैं घुटा-सा महसूस करता हूँ। स्वतंत्र होकर जीना चाहता हूँ मैं।"

"जान! मैंने आपसे प्यार किया है सच्चे मन से, और मेरे प्यार को इतना तुच्छ मत समझिए। बहुत शक्ति होता है प्यार में। लेकिन आप क्या जानो! आपने तो शायद कभी प्यार किया भी नहीं है।...किया होता तो इस तरह अपने से दूर करने की बात नहीं करते। कभी ये नहीं सोचते कि मुझपे क्या बीतती है इन बातों को सुनकर। इस तरह अगर आप ही कमजोर पड़ जाओगे, तो मेरा क्या होगा! आप ही मेरी हिम्मत हो।"

"तुमने कमजोर कंधों को अपना सहारा चुना है। अब भी वक्त है। इससे पहले कि

बहुत देर हो जाए, हमें अपने रास्ते अलग कर लेने चाहिए।"

(दूसरी तरफ से सुबकने की आवाज सुनाई देती है।)

"तुम रो रही हो?...सीमा...प्लीज रोओ मत...सॉरी, माफ करो।"

"आप समझते क्या हैं अपने आप को! जब जी चाहा रुला दिया, जब जी चाहा हँसा दिया। कोई गुड़िया हूँ मैं?...अरे प्यार करते हो तो निभाना भी सीखो। डरपोक कहीं के!"

"नहीं बस मैं ये..."

"चुप्प! एकदम चुप्प! दूँगी एक खींचकर... ज्यादा बोलोगे तो।"

"चप्पल से या थप्पड़ से?"

"अपने होंठों से"

"कहाँ?"

"आपके सिर पर। ज्यादा दिमाग लगाने की जरूरत नहीं है। और फोन रखिए अब। मेरे पास समय नहीं है बकवास सुनने का।"

ज्यादा बात मतलब ज्यादा विवाद। लेकिन ये विवाद सिर्फ एक नोक-झोंक थी, कोई वास्तविक लड़ाई नहीं। झूठ-मूठ का रूठना, मनाना, इतराना, भाव खाना। धीरे-धीरे समय के साथ हमारे संबंधों में एक मजबूती आती गई। किसी रिश्ते की मजबूती इस बात से जाहिर नहीं होती कि दोनों के बीच कितनी कम लड़ाई होती है। वाद-विवाद रिश्ते को प्रगाढ़ता प्रदान करते हैं। जिस पर हम अपना हक समझते हैं, उससे हक से लड़ते भी हैं। धीरे-धीरे वह मेरी जिंदगी और परिवार का अभिन्न हिस्सा बन गई। महत्वपूर्ण मसलों पर उससे सलाह ली जाने लगी। ये आश्चर्यजनक किंतु सत्य है कि माँ भी अब उससे सलाह लेने लगीं। कौन-सी पूजा में कौन-सा नियम करना है, कौन-सा व्रत कब पड़ रहा है, क्या वर्जित है, क्या आवश्यक है, सब मालूम था उसे। मैंने भी उसकी सलाह मानकर दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया। उसे लगता था कि मैं बाहर निकलूँगा, तभी ज्यादा संभावनाएँ खुलेंगी। सही थी वह। आखिर कब तक मैं कोडरमा के एक छोटे-से गाँव में बैठा रहता। भगवान भी उनकी ही मदद करते हैं, जो खुद अपनी मदद करते हैं। अंततः मैंने अपने अंदर के डर और घबराहट को निकालकर टिकट बनाने का निश्चय कर लिया। बिहार और झारखंड के बाहर यह मेरी पहली यात्रा थी।

"चलो, दिल्ली जाना अब तय हुआ। टिकट बनवा लिए हैं।"

"अच्छा है। कब जाना है?"

"अगले महीने की 15 तारीख को। उससे पहले का टिकट नहीं मिल रहा था।"

"मिल नहीं रहा था या आपने लिया नहीं?"

"क्या मतलब?" आश्चर्य व्यक्त किया मैंने।

"मतलब ये कि आप घर छोड़ना नहीं चाहते। आपको मुझसे बात करना अच्छा लगता है। ये छूट जाएगा आपका फ्री में बात करना। आपकी गइया-बछिया छूट जाएगी। आपका दोस्त-समाज छूट जाएगा। आपकी ये आराम करने की आदत छूट जाएगी।" शायद वह कहना कुछ और चाहती थी, कह कुछ और रही थी। वह शायद धन्यवाद कहना चाहती थी। फोन कट। इस बार फोन मैंने काटा था। सफाई देना मुझे पसंद नहीं और जब कोई मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगाता है, तब मैं निरुत्तर हो जाता हूँ। मुझे कितना जाना है तुमने सीमा! इतने दिन बात करके भी ये न जान सकी कि मैं झूठ नहीं

बोलता। इस बार वह कॉल करती रही और मैं फोन काटता रहा। मेरी एक आदत है, मैं किसी को ज्यादा परेशान होते नहीं देख सकता। पाँच कॉल काटने के बाद मैंने एक मैसेज किया- “अभी बात नहीं कर सकता। रात में बात करेंगे।”

रात को मैं फोन का इंतजार करता रहा। हाथ में मोबाइल लिए मैं बार-बार समय देखता। दस बज गए, सवा दस, साढ़े दस... ग्यारह। क्या बात है, उसने फोन करके सॉरी नहीं बोला। चलो, मैं ही झुक जाता हूँ। क्या फर्क पड़ता है वो कॉल करे या मैं करूँ! कॉल किया मैंने। एक लंबी रिंग के बाद फोन कट गया। मैंने दुबारा कॉल किया- “ट्रिन, ट्रिन... आपने जिस नंबर पर कॉल किया है वो अभी व्यस्त है।” मतलब वह जगी है और मेरा कॉल काट रही है। तीसरी बार, चौथी बार, पाँचवीं बार। रिंग होते ही वह फोन काट देती। अगर उसे मन नहीं है, तो कम-से-कम एक बार बोल तो सकती थी। सिर्फ आज की ही बात नहीं है, हमेशा। हमेशा मैंने ही झुककर विवाद खत्म किया है। लेकिन अब और नहीं। इनफ इज इनफ! कहाँ तो उसे फोन करके सॉरी बोलना चाहिए था और कहाँ वह मेरे ही कॉल का जवाब नहीं दे रही है। इतना घमंड! काफी देर क्रोधाग्नि में जलने के बाद मैंने एक मैसेज किया- “हम ये रिश्ता तोड़ रहे हैं। दुर्गा माँ की कसम।” और फिर मैं सो गया।

सुबह के छह बजे से ही मेरा फोन बजना शुरू हो गया। ये तो अच्छा था कि मैंने साइलेंट मोड में रखा था उसे। स्क्रीन पर बार-बार उभरते ‘सीमा’ को देखकर मेरे अहं की जो तुष्टि हुई, वो मैं ही जानता हूँ। मन तो हुआ कि फोन स्विच ऑफ करके रख दूँ। लेकिन चार या पाँच रिंग के बाद फोन भाभी को दे दिया। पता नहीं उनसे क्या बात हुई, फिर उन्होंने फोन माँ को दे दिया। मैं इधर से सिर्फ इतना ही सुन पा रहा था- “कोई बात नहीं, गलती सबसे हो जाती है। मैं समझा दूँगी उसे, अब चुप हो जाओ।... ये तो पागल है ही, कैसे बात किया जाता है, ये भी नहीं मालूम। रोओ मत, कुछ नहीं होगा... बात क्यों नहीं करेगा, रुको, मैं देती हूँ उसे।” उसके बाद लगभग आदेशात्मक अंदाज में उन्होंने फोन मुझे थमा दिया। मैं सिर्फ उधर से रोने की आवाज सुन पा रहा था। जब रुलाई थमी, तब सफाई शुरू हुई। दरअसल कल रात उसका फोन उसके पास था ही नहीं। उसका भाई फोन लेकर पटना चला गया था और वही बार-बार फोन काट रहा था। ईश्वर! इतनी परेशान जिंदगी में इतनी गलतफहमी! कुछ तो रहम करो!

***

आज दिल्ली जाना था मुझे। सुबह से ही मैं उदास, परेशान और घबराया हुआ था। अंदर ही अंदर रुलाई आ रही थी मुझे। पूरी तैयारी हो चुकी थी। काश, कुछ ऐसा बहाना मिल जाए कि मुझे जाना न पड़े। काश, किसी पुरानी परीक्षा का परिणाम अचानक आ जाए। काश, घर में कोई बीमार पड़ जाए। काश कि शहर में कर्फ्यू लग जाए या भारत बंद हो जाए। काश कि दिल्ली में डेंगू या प्लेग फैल जाए। ये वक्त इतनी तेजी से क्यों बीत रहा है! बस कुछ घंटे और, फिर अपने प्यारे घर से इतनी दूर चला जाऊँगा। पता नहीं, फिर कब आना हो पाएगा। लेकिन आखिरी समय में इतनी दुविधा क्यों? हृदय को कठोर करो प्रकाश! तुम पहले इंसान नहीं हो, जो घर छोड़कर जा रहे हो। ये तो हर किसी के साथ होता है।

“माँ, क्या कर रही हो तुम, सुबह से परेशान दिख रही हो।”

“तुम्हारे लिए ठेकुआ और निमकी छान रही थी... रास्ते के लिए। ये हॉर्लिक्स का डिब्बा। वहाँ रोज खा लेना दूध से। ये थोड़ा-सा अचार...निंबू का, तुम्हे पसंद है ना। और कुछ रास्ते के लिए पूड़ी, भुजिया बनाना है... कितना टाइम बचा है?”

(माँ, माँ, माँ... मत करो इतना मेरे लिए। मैं इस लायक नहीं!)

“पूरा घर उठाकर दे दीजिए। इतना सामान कौन ले जाएगा?”

मेरे अंदर का दबा ज्वार बाहर निकल गया। मुझे माँ पर क्रोध नहीं करना चाहिए था। लेकिन माँ तो माँ होती है। वह मन की बात जान लेती है।

“क्या बात है? मन नहीं है जाने का?”

मैं अपने आँखों के आँसुओं को तो रोकने में सफल रहा, लेकिन काँपती हुई आवाज को मैं नहीं रोक पाता। इसलिए सिर्फ सिर हिलाकर इशारा किया- “नहीं।” माता का हृदय तो कोमल होता ही है, लेकिन मेरे बेचैन दिल को तसल्ली तभी मिलती, जब मैं अपने हमराज से ग्रीन सिग्नल पा लेता। मेरे कँपकँपाते हाथ मोबाइल के ग्रीन बटन की ओर बढ़ गए।

“अब कैसा लग रहा है?...कितने बजे निकलना है? तैयारी हो गई है?” एक साथ कई प्रश्न।

“...जान...मैं नहीं जा रहा हूँ।”

“क्या बोल रहे हैं आप? क्यों मजाक कर रहे हैं?”

“मजाक नहीं कर रहा। मैंने अपने आप को बहुत कठोर किया लेकिन मैं...बहुत घबरा रहा हूँ। प्लीज मुझे माफ कर दो।”

“आखिरी समय में ये दुविधा क्यों?...खैर, इंसान को वही करना चाहिए जो उसका मन कहे। शायद इसमें ही कोई अच्छाई छिपी हो।”

“मैंने अपने कुछ दोस्तों से, जो दिल्ली में रहते हैं, बात किया है। पता चला है कि वहाँ भी कोई जॉब नहीं है।...थक-हार कर सब सिविल या इंजीनियरिंग सर्विसेज की तैयारी कर रहे हैं।”

“आप भी ग्रुप में पढ़ाई करते तो अच्छा रहता न!”

“हाँ, लेकिन मैं अब पिताजी का पैसा खर्च नहीं करना चाहता। अच्छा नहीं लगता।”

उस रात काफी देर तक पढ़ाई की मैंने। शायद मैं उस गलती की भरपाई करना चाहता था, जो मैंने की थी। शायद मैं अपने अपराधबोध से बाहर निकलना चाहता था। नहीं, मुझे अब ज्यादा मेहनत करनी होगी। सही कहा गया है कि बड़े-बुजुर्ग दूरदर्शी होते हैं। कुछ सोचकर ही पिताजी मुझे मना करते थे फोन पर बात करने से? ये बात करने का ही नतीजा है कि आज मुझे पढ़ाई में मन नहीं लगता है। कुछ करना होगा मुझे। कुछ कड़े फैसले! हाँ, अब सिर्फ आधे घंटे बात करूँगा, सोने से पहले।... निर्णय करना आसान होता है, उस पर अमल करना उतना ही मुश्किल। दो-चार दिन तक तो मैंने अपने दृढ़ निश्चय का परिचय दिया, लेकिन समय के साथ मेरे इरादे कमजोर पड़ते चले गए। फिर से वही सुबह, फिर से वही शाम। वही दोपहर, वही रात। जी चाहता कि बस बात होती रहे। फोन रखते ही वही तड़प, वही अकुलाहट। फोन करो तो कुछ बात नहीं। क्या खाए, क्या पिए, कौन आया, कौन गया। माँ क्या कर रही हैं, पापा क्या कर रहे हैं! एक ठहराव-सा आ गया था हमारे रिश्ते में। कुछ भी नयापन नहीं। न ही मैं कहीं सेट हो पा रहा था, न ही

हमारी शादी की कोई बातचीत हो रही थी। बस, समय गुजरता जा रहा था। कभी-कभी मुझे अपने आप से नफरत होने लगती कि मैं क्या कर रहा हूँ! क्यों मैं किसी की जिंदगी से खिलवाड़ कर रहा हूँ। क्या मैं उसकी उम्मीदों पर खरा उतर पाऊँगा? अब हमारी बातचीत में भी ये अनजाना भय खुलकर सामने आने लगा था। हमारी प्यारभरी बातें अचानक घूमकर उस अनिश्चित भविष्य की ओर मुड़ जातीं, जहाँ घना अँधेरा था और एक हल्की-सी आस की किरण अब धुँधली पड़ रही थी।

***

हमारे इंजीनियरिंग कॉलेज में उस दिन इंटरव्यू होने वाला था लेक्चरर के पद के लिए। वैसे तो मैंने उस कॉलेज में कदम न रखने की कसम खाई थी, लेकिन वक्त की बात। जाना पड़ा। आदतन मैंने उसे कॉल किया। जब भी मैं कोई काम करने जाता, तो उसकी सूचना वहाँ तक जरूर पहुँचा देता। लेकिन उधर से कोई जवाब नहीं आया। लगता है सो रही होगी। खैर, मैंने कॉलेज की ओर कदम बढ़ा दिए। नौ महीने बाद मैं उस संस्थान के सामने खड़ा था, जिसके साथ मेरी अनेक खट्टी-मीठी यादें जुड़ी थीं। वो अर्द्धनिर्मित बिल्डिंग अब पूरी हो चुकी थी और लोहे की निकली छड़ें अब दिखाई नहीं देती थीं। ऊबड़-खाबड़ दीवारें जिनसे सीमेंट गिरती थी, अब विभिन्न रंगों से सजी थी। सामने की पथरीली और बंजर जमीन अब समतल हो गई थी और हरे-भरे वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सड़क के दोनों ओर रखे खूबसूरत गमलों में हँसते-गाते फूल। यहाँ से खड़े होकर मैंने संस्थान को नीचे से ऊपर तक निहारा। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे 'ऑक्सफोर्ड इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी' को देखकर गर्व की अनुभूति हुई। कहाँ वो गरीब-हाल चार कमरों का कॉलेज और कहाँ ये चार मंजिला अट्टालिका। महँगी गाड़ियों से उतरते लोग, भागते लोग। एक स्फूर्ति थी माहौल में। एक पल के लिए घबरा गया मैं। अक्सर बड़ी इमारतों और चुस्त लोगों को देखकर ऐसा हो जाता है मेरे साथ। मेरे फोबिया ने मुझे फिर से जकड़ लिया। ये तो अच्छा हुआ कि कुछ जाने-पहचाने चेहरे दिखाई दे गए। मालूम हुआ कि ये लोग भी इंटरव्यू के लिए आए थे। सुनकर घबराहट थोड़ी कम हुई। ये भी ज्ञात हुआ कि अभी आर्थिक मंदी का दौर चल रहा है। कहीं नौकरी नहीं है। इसलिए अच्छा तो यही है कि टीचिंग लाइन से जुड़ा जाए। पढ़ाई भी हो जाएगी और तैयारी भी। और पैसा भी अच्छा मिल रहा है। सुना है, कोई पंद्रह हजार मिलेगा प्लस टीए-डीए अलग से।

ये कहना मुश्किल है कि पूछने वाला कठिन प्रश्न कर रहा था या मेरी तैयारी अधूरी थी। हर प्रश्न एक बाउंसर की तरह लगता और गेंद सीधे सिर के उपर से निकल जाती। एक-दो प्रश्नों का मैंने हकलाकर कुछ उत्तर दिया। पूछने वाला और जोश में आ गया।

(अँग्रेजी में)- "लेकिन आपके इस प्रोजेक्ट का दैनिक जीवन में क्या उपयोग है? मुझे तो ये प्रोजेक्ट बेतुका लगता है।"

मैं- "सर...ये...वो...ऐसा है कि..."

अब वो अपनी कुर्सी पर पीछे लदक गया और अपने दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जाकर कुछ सोचने लगा। मुझे लगा, कहीं वो गुस्साकर गाली न देने लगे। लेकिन उसने गाली नहीं दी, बल्कि शांत स्वर में कहा- "कोई एक वजह बताइए कि क्यों आपको चुना जाए?"

कहना तो मैं ये चाहता था कि सर, मेरी सगाई हो चुकी है। अगर आपने मुझे नहीं चुना, तो मेरी इज्जत का कबाड़ा निकल जाएगा। चाहता तो मैं था कि उसके पैरों पर गिर जाऊँ और कहूँ कि सर, आप ही मेरे भाग्यविधाता हैं। मेरे अन्नदाता हैं। लेकिन मेरी जुबान से इतना ही निकला- "चुनना या न चुनना तो आप पर निर्भर करता है। मैं क्या कहूँ?"

"ठीक है मि. प्रकाश, वी विल इन्फॉर्म यू इफ यू आर सिलेक्टेड!"

पर मैं जानता था कि मुझे नहीं चुना जाएगा।

बाहर आते ही मेरा फोन गनगना उठा। उम्मीद के मुताबिक सीमा थी। नाकामी की एक और सूचना देने की हिम्मत नहीं थी मुझमें। मन के एक हिस्से ने कहा- काट दो। लेकिन कब तक! इससे पहले कि मन कोई निर्णय ले, फोन कट गया। मैं अनिश्चित-सा, सड़क पर घिसटाए चला जा रहा था। पैर बढ़ रहे थे मगर दिमाग रुक गया था। तभी दुबारा फोन बजा। यंत्रवत् मैंने फोन उठा लिया।

"हाय! कैसा रहा इंटरव्यू?" उत्साहभरी आवाज ने एक ही झटके में मुझे निरुत्तर कर दिया। मैं एक पल में उसे आसमान से गिराना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने घुमाकर जवाब दिया।

"इंटरव्यू तो अच्छा रहा, लेकिन कंप्टीशन बहुत टफ है। अब तो नरक में भी मारा-मारी है। एक अनार-सौ बीमार। देखो, क्या होता है!"

"आपका हो जाएगा, ऐसा मेरा दिल कहता है।"

"क्यों?"

"क्योंकि मैंने आज हनुमान चालीसा का पाठ किया है। पूरे 108 बार।"

अब झूठ बोलना मेरे लिए असंभव हो गया था। अब अगर मैं सामने वाले को गुमराह करूँ, तो ये झूठ पत्थर की तरह मेरे सीने पर पड़ा रहेगा। मैंने हकीकत बता दी।

***

उस रात वह काफी खुश नजर आ रही थी। दिन की घटना के बाद यह मेरे लिए आश्चर्यजनक था। मुझे लगा था कि वो शायद मुझसे अब बात नहीं करेगी। लेकिन ये क्या, वह न केवल खुश थी, बल्कि उत्साह में उसने एक अनोखा प्रस्ताव भी रख दिया- "जान, चलो आज हम लोग शादी करते हैं।"

"ये क्या पागलपन है? फोन पर शादी? और तुम इतनी खुश क्यों हो?"

"तो दुखी रहने से क्या हो जाएगा? जो होना है, वो तो होकर ही रहेगा। इसलिए खुश रहो न यार!"

मैं समझ गया। इंसान एक हद तक ही दुख बर्दाश्त कर सकता है। दुख की अधिकता भी इंसान में बोरियत पैदा करती है। शायद इससे बचने के लिए इंसान खुश होने का नाटक करने लगता है। मैं उसकी इस बनावटी खुशी को भंग नहीं करना चाहता था। मैंने भी अपने अंदर के बनावटी पुरुष को बाहर निकाला- "शादी तो ठीक है, लेकिन शादी के बाद सुहागरात भी मनाना होगा।"

"सुहागरात भी मनेगा। आज मैं पूर्ण रूप से आपकी हो जाना चाहती हूँ। मैं आज वो सबकुछ आपको सौंप देना चाहती हूँ, जो एक लड़की सिर्फ अपने पति के लिए सँजोकर रखती है। मेरा तन, मेरा मन, मेरी आत्मा, मेरा जीवन। जैसे दो लताएँ एक-दूसरे से लिपट

जाती हैं, वैसे मुझसे लिपट जाओ मेरे प्रियतम। इतना कसकर जकड़ लो मुझे कि बीच से हवा भी न गुजर सके।"

"चलो-चलो, रोमांटिक दुनिया से बाहर आओ। अभी हमारी शादी नहीं हुई है।"

"तो कर लेते हैं न। आप पहले मेरे गले में मंगलसूत्र डालिए।"

"क्या बकवास है?"

"आप डालिए न, मैं मंत्र पढ़ती हूँ। मुझे सब मालूम है।"

"आफ्फो! क्या बचपना है? सच में बोर हो रहा हूँ मैं इस वार्तालाप से।"

बातचीत को किसी अन्य दिशा में मोड़ते हुए मैंने पूछा- "तुम्हें डर नहीं लगता इस बात से कि मुझे जॉब मिलेगी या नहीं?"

"नहीं। पहले लगता था, लेकिन अब नहीं। किस्मत को भगवान के हाथ में छोड़ दो, तो आपको किसी बात से डर नहीं लगेगा। मैंने तय कर लिया है, अब जो भी हो, जैसे भी हो, मैं सिर्फ आपकी बनूँगी। मेरा मन अब किसी और को स्वीकार नहीं कर सकता।"

"मैं अगर एक दुकान खोलके बैठ जाऊँ तो भी नहीं?"

"अगर आप चाय बेचोगे तो भी नहीं। मैं आपके काम में अपना हाथ बँटाऊँगी।"

पाँच महीने गुजर चुके थे, हमारे उस एकमात्र मिलन को। समय पल, मिनट, घंटे, दिन और महीने की शक्ल में गुजरता जा रहा था और हमारी बेचैनी भी उसी अनुपात में बढ़ती जा रही थी। अब मिलने के तरीके खोजे जाने लगे थे। उसके घर आरा में मिलने के विचार को खारिज कर दिया गया, क्योंकि वहाँ उसे अधिकांश लोग पहचानते थे। पटना? नहीं घरवाले नहीं जाने देंगे अकेले। तो? "एक काम किया जा सकता है। दशहरा के बहाने आप अपने मामा के घर बोकारो चले जाना। वहीं पर मेरे मामा का भी घर है। इस प्रकार हम लोग किसी तटस्थ जगह पर मिल सकेंगे।" हालाँकि मुझे इस योजना की सफलता पर संदेह ही था, फिर भी नियत तारीख को मैं अपने गंतव्य पर पहुँच गया। और उम्मीद के मुताबिक वह नहीं आ पाई थी। कारण- पापाजी को फुरसत नहीं है। खैर, नई जगह पहुँचकर अच्छा ही लगा। जिंदगी की एकरसता से अलग। अपनी बचपन की यादों को दुबारा जीने लगा था मैं। आँगन में खड़ा वो अमरूद का पेड़ अब भी था, जिस पर चढ़कर मैं अपनापन महसूस करता था। मैंने उस खरगोश के बारे में जानना चाहा, जो मेरी गोद में खेलता था। आँगन के एक कोने में वो बाइक खड़ी थी, जिसे मामाजी चलाते थे। शायद अब नहीं चलाते थे। चापाकल देखकर मैंने आश्चर्य व्यक्त किया कि अभी तक यह सही सलामत कैसे है?

मामी लोढ़ा लेकर आईं और परीछने का नाटक किया। मैं उनकी बहन का होने वाला दामाद था, अर्थात उनका दामाद। हँसते हुए मेरे चेहरे पर हल्का-सा प्रहार किया- "आइए-आइए दामाद जी। कोई दिक्कत तो नहीं हुई आने में?"

"अच्छा! तो मैं अब भगिना से दामाद जी हो गया? चलिए, अब आपको ज्यादा सत्कार करना पड़ेगा।"

"मेरा सौभाग्य। बहुत मुश्किल से मिलता है ऐसा मौका, नहीं तो आजकल हर कोई व्यस्त है अपने में। किसके पास फुरसत है?"

मामी की साधारण-सी बात भी मुझे व्यंग्य की तरह लगी। यानी कि सिर्फ मैं फुरसत में हूँ। बाकी लोग तो अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। सच ही है। जिन भाइयों को मैंने गोद

में खिलाया था, आज इतने बड़े हो गए कि कमाने भी लगे। छोटा भाई जो मुझसे सात साल छोटा था, इंजीनियर बनने जा रहा था। वक्त रुका थोड़े ही है।

शाम को मामाजी लौटते वक्त मकई साथ में ले आए- "लो जी, पकाओ फटाफट और खिलाओ छोटू (मेरा घरेलू नाम) को। एकदम फ्रेश माल है।"

"आपको तो बहुत आसान लगता है मकई पकाना। रोज-रोज ले आते हैं। आप ही पकाइए, हमसे नहीं होगा।"

"तो कौन-सा भारी काम है! लाओ बोरसी, मैं पकाए देता हूँ।... मिट्टीतेल कहा है?... दूसरा पंखा दो, इससे नहीं होगा।"

मामी उठकर आईं- "लाइए, आपसे हो गया। जिसका जो काम है, वही करे।... पूरा धुआँ भर दिया रूम में। ऐसे मकई पकता है? इतना तेज आँच पर?"

"अब तुम्हारे जितना होशियार होता तो यहीं रहता?"

"चलिए मकई खाइए, मेरा दिमाग मत खाइए।"

बरसात की हल्की-हल्की फुहारों के बाद जब वातावरण में एक सिहरन फैल जाती है, बोरसी के पास बैठना अच्छा लग रहा था। मामी मकई पकाए जाती थीं और हम लोग नींबू, मिर्च और नमक के साथ चटकारे लेकर खाए जा रहे थे। ताजी-ताजी मकई का मीठा स्वाद अचानक स्वादहीन हो गया, जब मामी ने मेरी दुखती रग पर हाथ रख दिया। "सबकुछ तो ठीक है, बस भगवान आपको एक नौकरी दे देते। इतना बढ़िया बर-परिवार है, अच्छा मकान है। कोई चीज की कमी नहीं है। बस..."

"अरे हो जाएगी नौकरी, इसमें कौन-सी बड़ी बात है। आज न कल हो ही जाएगा।" मामा मुझे शर्मिंदा होने से बचाना चाहते थे।

"देखिए, हम लोग मध्यस्थ हैं। कुछ भी ऊँच-नीच होगा, तो हमें ही सुनना है। कितने अरमानों से हमने ये रिश्ता तय किया था, ये सोचकर कि जब इंजीनियर दामाद उतरेगा तो मेरा भी मान बढ़ जाएगा।... खैर, भगवान की मर्जी।... हम तो कहेंगे कि अब घर का मोह छोड़िए। बाहर निकलिए। शादी से पहले कहीं सेट हो जाइए।"

इंजीनियर का दर्द एक इंजीनियर ही समझ सकता है। विशाल जो अभी इंजीनियरिंग पढ़ रहा था, उसने वर्तमान स्थिति से अवगत कराया- "अभी बहुत दिक्कत है नौकरी की। मेरे कॉलेज के लड़कों का भी प्लेसमेंट नहीं हो पाया। जब बढ़िया-बढ़िया कॉलेज में कोई कंपनी नहीं आ रही है, तो नए कॉलेजों की क्या औकात! कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक्स वालों का तो और भी बुरा हाल है।"

इतने मानसिक तनाव के बाद भी मेले के लिए तैयार होना वाकई एक साहसिक काम था। आदत के मुताबिक मैं सबसे पहले तैयार हो गया था, क्योंकि मेरे लिए तैयार होने का मतलब सिर्फ बाल झाड़ना था। पता नहीं लोग तैयार होने में इतना समय क्यों लगाते हैं। मुझे कभी समझ में नहीं आया। मैं ये भी सोचने लगा कि लोग सुंदर क्यों दिखना चाहते हैं। क्या ये विपरीत लिंगी को आकर्षित करने का एक तरीका नहीं है? क्या लोग तब भी सुंदर दिखने की कोशिश करते, यदि दुनिया में सिर्फ पुरुष ही होते या सिर्फ स्त्रियाँ ही होतीं!

"अरे चलो भाई, अब रहने भी दो। कितना सजोगी?" मामा ने आवाज लगाई।

"वहाँ क्या ट्रेन छूट रहा है आपका? हर काम में हड़बड़ी! बस तैयार होके खड़ा हो

जाना है। घर में और भी काम होते हैं।"

"लगता है मामा आज पूरे मूड में हैं। जमकर मौज-मस्ती करेंगे।" मैंने चुटकी ली।

मामी- "नहीं-नहीं, इनको कहीं मन नहीं लगता है। देखिएगा, मेला में हड़बड़ाएँगे जल्दी घर चलने के लिए। थोड़ी ही देर में बोर हो जाते हैं कहीं भी।"

बोर तो मैं भी हो जाता हूँ कहीं भी। बहुत जल्दी। मेला जाने के लिए तैयार होना जितना उत्तेजक होता है, मेला घूमना शायद उतना रोमांचक नहीं होता। खासकर मेरे जैसे एकांतवासी को। पलभर में ही बेतरतीब भीड़ मेरे दिमाग में उतरने लगी। लोगों का उत्साह और खुशी मुझे निरर्थक-सी लगने लगी। अचानक मैं भीड़ में तन्हा महसूस करने लगा।

"भैया, ये देखिए, ये बोकारो का सबसे बड़ा पंडाल है।"

मुझे तो कोई अलग नहीं दिखता। कुल तीन पंडालों में घूमने के बाद मैं शारीरिक और मानसिक रूप से थक गया था। अँधेरे आकाश में गरदन उठाए खड़ा वह भव्य पंडाल मुझे आकर्षित करने में नाकाम रहा। एक पल के लिए मैं उसकी लागत और उपयोगिता के बारे में सोचने लगा। लाखों खर्च करो और फिर नष्ट कर दो। क्या फायदा! ...लेकिन क्या ये भी सच नहीं है कि लोगों के एकरस और बेरंग जीवन में खुशियाँ भर देता है ये मेला! नई ऊर्जा भर देता है मेला!

झूले के उच्चतम बिंदु पर मेरा मोबाइल बज उठा। ऐसे रोमांचक क्षण में सीमा से बात करना खास था।

"क्या मैं आपके व्यस्त जीवन से कुछ पल ले सकती हूँ?"

"काश, तुम मेरे पास होती, तो ये पल कितना शानदार होता! डर और रोमांच से तुम मुझसे चिपक जाती।" भारी शोरगुल के बीच भी मैं रोमांस कर रहा था।

"तो जनाब कैसा लग रहा है, मामाजी के साथ घूमने में? मजा आ रहा है?"

"मैं मामाजी के साथ नहीं घूम रहा... और मजा क्यों नहीं आएगा? लाइफ में कुछ बदलाव तो होना ही चाहिए।"

"अब आपका उम्र मामाजी के साथ घूमने का है? सीरियस हो जाइए सरजी!"

मजाक में किया गया इशारा, झूले के हिचकोलों से भी ज्यादा डरावना था। देर रात तक मैं छत की ओर ताकता रहा गया। घूमते हुए पंखे की भाँति मैं भी दिशाहीन हो गया था, जो गति तो करता है, लेकिन कहीं पहुँचता नहीं है। मैं यहाँ होने की वजह ढूँढ़ने लगा। सच में, जिंदगी के इतने नाजुक मोड़ पर मैं मौज-मस्ती कर रहा हूँ। मैं कहाँ हूँ? क्यों हूँ? क्या कर रहा हूँ? मैं किसे धोखा दे रहा हूँ, दूसरों को या खुद को! नहीं, अब यहाँ रहना ठीक नहीं।

सुबह मुझे तैयार होते देख सभी ने आश्चर्य व्यक्त किया। "अरे भैया, ये अचानक आप क्यों जाने लगे? आज तो दशहरे का असली मेला है।"

"नहीं, मुझे अब चलना चाहिए। मेले में क्या रखा है?"

"एक बात बताइए, कुछ गलती हुई क्या हम लोग से? किसी ने कुछ कहा है?" मामी ने फुसफुसाकर पूछा।

"कोई क्या कहेगा हमसे और क्यों कहेगा? मुझे अब किसी बात का बुरा नहीं लगता।"

"ऐसी उखड़ी-उखड़ी बातें क्यों करते हैं? किसकी जिंदगी में उतार-चढ़ाव नहीं आते।

हम लोगों ने भी कितना संघर्ष किया है, आपसे कुछ छिपा नहीं है। बस अपना कंधा थोड़ा मजबूत कर लीजिए, बोझ उठाने के लिए। समय के साथ सब ठीक हो जाएगा।"

इंसान मान का भूखा होता है। अपनी कदर देखकर मेरे अहं की तुष्टि हुई। लगा कि मैं अब भी उतना निरर्थक नहीं हुआ हूँ, जितना खुद को समझता हूँ।

"माँ की तबियत खराब है, मुझे निकलना होगा।"

अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए मैं झट-से आंगन के बाहर निकल गया। मुझे लगा, तीन जोड़ी आँखें मेरी पीठ पर देर तक गड़ी हुई थीं।

***

अन्य रातों की तरह वो रात भी बिल्कुल सामान्य थी। कुछ भी अलग नहीं। रोज की भाँति मैं बिस्तर पर लेटा नींद का इंतजार कर रहा था। इसी बीच बिजली चली गई। बरसात का मौसम, भुनभुनाते मच्छर और यह अँधेरा। अचानक मैं और ज्यादा नकारात्मक हो गया।

"छोटू, इलेक्ट्रीशियन को बुलाए थे आज?" पिताजी ने आवाज लगाई।

"कई दिन से इनवर्टर खराब है, कब बनेगा?"

"याद नहीं रहा..."

"क्यों, फोन पर बात करना तो नहीं भूलते! दिनभर बस फोन पर बिजी रहोगे, तो याद कहाँ से रहेगा?"

जख्म पर नमक रगड़ दिया पिताजी ने। लगा उनके सामने फोन पटककर तोड़ दूँ। मुट् ठी भींचकर मैंने दीवार पर दो-तीन मुक्के जमाए। क्रोध और हताशा की मनःस्थिति से अभी गुजर ही रहा था कि साइलेंट मोड में रखा फोन चमक उठा। पूरी तीन रिंग के बात मैंने फोन उठाया।

"सो गए थे क्या? सॉरी अगर मैंने आपको डिस्टर्ब किया हो।" एक चुप्पी।

"क्या हुआ?... परेशान हो?... बात नहीं करनी?"

सवालों की बौछार का एक ही जवाब था मेरे पास... चुप्पी। शायद मैं जड़ हो गया था। वार्तालाप लंबा नहीं हो सकता, अगर सामने वाला चुप रहे।

"ठीक है, गुड नाइट। फोन रखती हूँ।" ऊबकर उसने फोन काटना चाहा।

"रुको... एक बात कहनी थी।"

"क्या?"

"हमें अब एक-दूसरे से अलग हो जाना चाहिए। तुम्हें मालूम है, मैं एक स्वतंत्र किस्म का आदमी हूँ। जिम्मेदारी उठाना मेरे बस की बात नहीं। मैंने बहुत सोचा। खुद का आकलन किया। मुझे लगता है, मैं एक लापरवाह इंसान हूँ। मैं खुद के बनाए नियम पर कायम नहीं रह पाता। एक अनुशासनहींन आदमी के साथ तुम्हें कभी सुख नहीं मिल सकता।... हाँ, मैं एक नकारात्मक आदमी हूँ, नकारात्मक। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, तुम इस रिश्ते के लिए इनकार कर दो। समय का इशारा जो नहीं समझता, उसे बाद में बहुत ठोकर खानी पड़ती है।"

"और कुछ?"

"एक नहीं, हजार कमियाँ हैं मुझमें। बेरोजगार तो हूँ ही, दुबला-पतला शरीर, आँखों

पर चश्मा, शर्मीला, दब्बू... और न जाने क्या-क्या! मेरा परिवार भी तुम्हारे लायक नहीं है। कहाँ तुम हँसने-बोलने वाली लड़की और कहाँ मेरा गुमसुम परिवार, जहाँ लोग आपस में खुलके बात भी नहीं करते। कहाँ तुम शहर की लड़की, कहाँ ये जंगल-देहात।...एकदम बेमेल जोड़ी!"

एक चुप्पी।

मेरे पास शायद शब्द खत्म हो गए थे। मैं जवाब का इंतजार कर रहा था बात बढ़ाने के लिए।

"क्या हुआ? क्या सोच रही हो?"

कुछ देर की शांति तूफान लेकर आई। "ठीक है, आप यही चाहते हैं न कि मैं ये रिश्ता तोड़ दूँ? ऐसा ही होगा, मैं आपके शौक को पूरा कर दूँगी।" मैंने दुबारा फोन नहीं किया, न ही उधर से कोई फोन आया। हल्की-सी उम्मीद लिए मैं नींद के आगोश में समा गया।

सुबह के सात बज गए, लेकिन 'गुडमॉर्निंग' वाला कॉल नहीं आया। आठ, नौ, दस, ग्यारह बज गए। मेरे दिल की धड़कनें तेज होने लगीं। क्या बात है, कहीं वो सचमुच तो नाराज नहीं हो गई! मैं कॉल कर नहीं सकता था, क्योंकि मैंने ही मना किया था। फिर भी एक उम्मीद में बार-बार फोन चेक कर लेता था। कई बार मेरा हाथ हरे बटन की ओर बढ़ा, लेकिन फिर रुक गया। बारह बजे एक मैसेज आया-

"हो रहा है जुदा, दोनों का रास्ता
दूर जाके भी मुझसे तुम सदा मेरे रहना
कभी अलविदा ना कहना...।
मैं आपको हमेशा मिस करूँगी जान। ये मेरा आखिरी मैसेज है। मैं आपकी जिंदगी से बहुत दूर जा रही हूँ। अपना ख्याल रखना। गुडबाय।"

उस मैसेज को मैंने कितनी बार पढ़ा, मुझे याद नहीं। शायद उसमें जितने शब्द थे, उतनी बार। एक-एक शब्द को गौर से पढ़ा मैंने। ये कैसा मैसेज है? ये क्या हो गया? क्यों हुआ? हाथ में मोबाइल लिए देर तक मैं चेतनाहीन खड़ा रहा। ऐसे अवसरों पर दिमाग भी शायद रुक जाता है। कटे हुए वृक्ष की भाँति मैं बागान की गीली जमीन पर गिर पड़ा। फोन हाथ से छिटक दूर जा गिरा। कितनी देर तक मैं वहाँ पड़ा रहा, मुझे याद नहीं। माँ की आवाज ने मुझे जगाया- "यहाँ मिट्टी में क्यों सोए हुए हो?" हड़बड़ाकर उठा मैं कपड़े की धूल झाड़ते हुए बहाने खोजने लगा- "बस ऐसे ही। धूप में लेटना अच्छा लग रहा है।"

मैं रोना चाह रहा था। जब तक मैं खुलके रो नहीं लेता, मेरा दिल हल्का नहीं होता। मैं घर के सबसे एकांत कोने में फोन लेकर बैठ गया। जिसने दर्द दिया था, उससे ही दवा की उम्मीद थी। एक वही थी, जिसके सामने मैं खुलकर रो सकता था। हाथ में फोन लेकर मैं असमंजस में बैठा रहा। मेरी उँगलियाँ फोन के हरे बटन की ओर जाकर रुक जाती थीं। कहीं मेरी आवाज सुनकर वो कमजोर पड़ गयी तो? कहीं फिर से वह अपना फैसला न बदल ले! कुछ देर की कशमकश के बाद आखिरकार मैंने कॉल बटन दबा ही दिया। रिंग होते ही दिल जोरों से धड़कने लगा। कैसे सामना करूँगा मैं, क्या बात करूँगा?

"हाय, कहिए कैसे याद किया?"

"वो तुम्हारा मैसेज... मैं बस... मैं तुम्हारे फैसले पर बधाई देना चाहता था। सही निर्णय है तुम्हारा।"

इसके बाद मुझे फोन पर रोने की इतनी तेज आवाज आई, मानो मैं किसी के मातम में पहुँच गया हूँ। रोने की आवाज चुंबक की तरह काम करती है। मेरे गले में कुछ अटका हुआ-सा महसूस हुआ। मैं शायद उसे चुप कराना चाहता था, लेकिन अचानक मैं फट पड़ा। खूब जोर-जोर से। बाढ़ की नदी की तरह लापरवाह रुलाई। दोनों ओर से बस रोने की आवाज आ रही थी। कोई भी इस स्थिति में नहीं था कि दूसरे को चुप करा सके। आँसुओं की नमकीन धाराएँ गालों से होकर जीभ तक जा रही थीं। हृदय पर पड़ा पत्थर पिघलकर आँसुओं के रूप में निकला जा रहा था। जब दिल कुछ हल्का हुआ, तो उसने बताना शुरू किया- "कल रात जब मैं आपसे बात करने के बाद चुपचाप सिसक रही थी, तो माँ ने देख लिया। मैं आवेग में सबकुछ कहती चली गई। वह एकदम-से बिफर पड़ी मुझपे कि मैंने पहले क्यों नहीं बताया ये सब। कि इतना दिन से ये सब चल रहा है और मैं चुपचाप सह क्यों रही थी। फिर उन्होंने पापा से सारी बातें बता दीं और आज सुबह पापा ने घोषणा कर दिया कि ये शादी हरगिज नहीं हो सकती।"

"चलो अच्छा है। आखिरकार हमारी पाँच महीने की प्रेम कहानी का सुखद अंत हो ही गया।" एक आह निकली मेरे दिल से।

"आप तो खुश हैं न! बार-बार मुझे अपने से अलग करने की बात करते थे। आखिर हो ही गई न आपकी मुराद पूरी? मैं न कहती थी, किसी बात को बार-बार दुहराने से वो बात सच हो जाती है।"

"जो होता है, अच्छा होता है। अब तुम्हें सरकारी नौकरी वाला लड़का मिलेगा। जिसका घर शहर में होगा। उसका सीना भी मुझसे चौड़ा होगा और उसके आँखों पर चश्मा नहीं लगा होगा। वह मेरी तरह झुककर नहीं चलेगा। वह मिलनसार होगा। भगवान तुम्हे मनचाहा जीवनसाथी दें।" मैं बस कुछ ऊटपटाँग-सा बके जा रहा था।

"मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे बस आप चाहिए। मुझे आप कभी समझ नहीं पाए और कभी समझ भी नहीं पाएँगे। मुझे इतना दर्द देने के लिए शुक्रिया। ये उपहार मैं जीवनभर सहेजकर रखूँगी।"

जीवन का सबसे मुश्किल दौर अब शुरू हो चुका था। इश्क की गहराई का अंदाजा तब तक नहीं लगता, जब तक कि इश्क कामयाब हो। जुदाई के बाद ही प्यार की गहराई समझ में आती है। एक-एक पल काटना अब मुश्किल हो गया था। किसके जाने का इंतजार करूँ और किसके आने का? कोई भी आने वाला पल अब मुझे सुकून नहीं दे सकता था। रह-रह कर मैं भावुक हो जा रहा था। इश्क में हारा हुआ इंसान अपनी नाकामयाबी ज्यादा देर तक नहीं छुपा सकता। दिनभर मेरी दशा देखकर लोगों को कुछ संदेह हो चुका था। रात में जब सभी लोग भोजन कर रहे थे, मैंने रोटी का एक टुकड़ा उठाया। सूखे हुए कंठ से टकराकर रोटी अपने आप बाहर आ गई। मैं उठकर हाथ धोने चला। माँ ने आश्चर्य व्यक्त किया- "तबियत खराब है क्या? खाना थोड़ा भी नहीं खाए?" मेरे अंदर हूक-सी उठी। मैं कुछ कहना चाहता था, लेकिन आवाज कंठ तक आकर रुक गई।

"क्या हुआ, कुछ बात है?"

मेरे अंदर का फूला हुआ गुब्बारा फूट पड़ा- "सबकुछ खत्म हो गया। उन लोगों ने रिश्ते से इनकार कर दिया है।" पहली बार मैं निर्ल्लज की भाँति फूट-फूट कर सबके

सामने रोया। सभी अवाक् थे। तकिए में मुँह छिपाकर मैं बच्चों की तरह फफक रहा था। मर्द का रोना बहुत बेसुरा होता है। मुझे खुद अपनी रुलाई ऊटपटाँग-सी लगी थी।

"बहुत पागल है ये। एकदम नामर्द जैसा रोता है। दुनिया में क्या लड़कियों की कमी है? ये नहीं तो कोई और सही।" पिताजी अपने स्वभाव के मुताबिक डाँट भी रहे थे और शायद समझा भी रहे थे।

"अब हम शादी नहीं करेंगे। हमसे नहीं होगा। हम कहीं और शादी अब नहीं कर पाएँगे।"

पता नहीं मेरे अंदर इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई थी। जिस पिता के सामने मैंने कभी खुलकर सामान्य बात तक नहीं की थी, उनके सामने मैं अपनी शादी की बात कर रहा था। माहौल तनावपूर्ण हो चुका था। सभी मानो विचारहीन हो गए हो या जैसे किसी ने उन्हें 'स्टेच्यू' बोल दिया हो। इस तरह की परिस्थिति का सामना कैसे करते हैं, शायद उन्हें नहीं मालूम था। वो मुझे झूठी दिलासा भी नहीं दे सकते थे। जो चीज उनके हाथ में थी ही नहीं, उसके बारे में वो क्या वादा करते? सर्फ भाभी ने थोड़ा-सा भरोसा दिलाया- "हम बात करेंगे सीमा से। वो इस तरह पीछे कैसे हट सकती है? मंगनी हुआ है आप लोग का। कोई खेल है क्या?"

"कुछ नहीं हो सकता है अब। उसके घरवाले पीछे हट रहे हैं।"

***

रात बीत गई। सुबह आई और बीत गई। दोपहर हुई, बीत गई। शाम आई, बीत गई। अब फिर से मुझे एक रात का सामना करना था। ये रात कैसे कटेगी! इतनी लंबी रात बिस्तर पर पड़े-पड़े कैसे गुजारूँगा! और रात गुजर भी जाए, तो सुबह कौन-सी खुशखबरी मिल जाएगी? 36 घंटे गुजर चुके थे उसकी आवाज सुने हुए। उसकी क्या स्थिति होगी? क्या वह भी उसी मानसिक यंत्रणा से गुजर रही होगी, जिससे मैं गुजर रहा हूँ? मैं फिर से भावुक हो उठा। क्यों ऐसा हो गया? क्यों भगवान! बनाकर क्यों बिगाड़ दी मेरी किस्मत!

मेरे शयनकक्ष के कोने में एक छोटा-सा मंदिर था। घर के सभी लोग वहाँ पूजा करते थे, सिवाय मेरे। शायद आलस्य की वजह से मैं पूजा नहीं करता था। लेकिन आज पता नहीं मुझे क्या हुआ था, मौसम में ठंड होने के बावजूद मैं मंदिर के सामने खड़ा हो गया था। एक-एक कर सभी मूर्तियों और चित्रों को मैं निहारने लगा। मेरे मन में कोई भाव नहीं आ रहा था। न ही मैं भगवान को श्रद्धा से देख रहा था, न ही मैं उनसे बिगड़ी किस्मत बनाने की माँग कर रहा था। अचानक मेरी जुबान से धाराप्रवाह शब्द निकलने लगे- "क्यों भगवान, आखिर मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है? बचपन से, थोड़ी-थोड़ी खुशियों से ही मैं खुश हो जाया करता था। कभी आपसे मैंने कोई बड़ी माँग नहीं की। ये आपको भी मालूम है, मेरी सबसे बड़ी जरूरत इस वक्त एक नौकरी की है। लेकिन वो भी कभी नहीं माँगा आपसे। या फिर आप यही चाहते हैं कि मैं आपके सामने हाथ जोड़ूँ, गिड़गिड़ाऊँ? अच्छा लगता है न आपको, जब कोई आपके सामने हाथ फैलाता है? आपके दिल को खूब ठंडक पहुँचती होगी। खूब मजा आता है अपने भक्तों को कष्ट देकर, फिर उनसे अपनी पूजा करवाने में न आपको? लेकिन याद रखिए, मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं आप जैसे झूठे

दयानिधान के सामने हाथ नहीं जोड़ूँगा। वैसे भी आप मेरा क्या बिगाड़ सकते है? मुझे न अब जिंदगी का मोह है, न मौत का डर। कर लो जो करना है। आपने मुझे जितना कष्ट देना था, दे दिया। अब मैं दुख-दर्द से ऊपर उठ चुका हूँ। मैं ये घोषणा करता हूँ कि मैं आज से पूर्ण नास्तिक बन रहा हूँ। मैं आज के बाद कभी आपके दरबार में नहीं आऊँगा, ये मेरा वचन है। हाँ, मैं नास्तिक हूँ, नास्तिक।" इस लंबे एकालाप के बाद मैं वहीं जमीन पर बैठ गया। कितनी देर तक बैठा रहा याद नहीं, और कब उस ठंडी जमीन पर सो गया, ये भी याद नहीं। शायद शरीर की अंदरूनी गर्मी की वजह से मैं रातभर शीतल फर्श पर निर्बाध सो सका था।

दो दिन तक मैं इसी विरह की अग्नि में जलता रहा। न सुबह की ताजगी, न दोपहर की अलसाई धूप, न रात की खामोश शांति, कुछ भी मेरे जिगर की अगन को कम नहीं कर पा रहा था। अन्न की कमी से मेरा दुबला शरीर और भी दयनीय हो गया था। मेरा फोन बेचारगी में घर के किसी कोने में पड़ा रहता। कभी-कभी मैं हल्की-सी उम्मीद लिए फोन चेक कर लेता था। लेकिन हर बार निराशा ही हाथ लगती। मन को व्यस्त रखने के लिए उस शाम मैं दोस्तों के साथ टहल रहा था बेमन से। फोन का बजना था कि सबने मजाक उड़ाना शुरू कर दिया- "स्साला दिनभर फोन पर बतियाता है, फिर भी मन नहीं भरता है। थोड़ा देर तो चैन लो।"

ये लोग क्या जानें क्या से क्या हो गया है! लेकिन फोन देखा तो पलभर के लिए अपनी आँखों पर यकीन नहीं हुआ। सच में सीमा थी- "कैसे हो? ठीक हो ना?"

"मैं ठीक हो सकता हूँ क्या? ये क्या प्रश्न पूछ रही हो सीमा? इतनी दिशाहीन और निरर्थक कभी न हुई थी मेरी जिंदगी। क्यों जिंदा हूँ मैं, ये भी पता नहीं। बस मरा नहीं हूँ, ये ही बहुत है। और तुम पूछती हो ठीक हूँ ना!"

"कुछ कीजिए जान, मैं आपके बगैर नहीं रह पाऊँगी। हर पल आपकी आवाज मेरे कानों में गूँजती है। ऐसे ही चलता रहा, तो शायद पागल हो जाऊँगी।"

"क्या कर सकता हूँ मैं? मेरे हाथ में अब कुछ नहीं है। तीर कमान से निकल चुका है। अब जो करना है तुम्हारे घरवालों को करना है।"

"मेरे घरवाले मेरी खुशी के लिए कुछ भी कर सकते हैं। उन्हें अपना निर्णय बदलना ही होगा।"

***

किसी जवान पुत्री के पिता की तरह ही शिवशंकर पांडे आज विचलित थे। पुत्री इश्क में गिरफ्तार होकर अन्न त्याग चुकी थी और पिता अपनी इकलौती बेटी का अनशन ज्ञात होते ही फफक पड़े। ईश्वर, ये कौन-सी परीक्षा ले रहे हो? एक तरफ कुआँ, दूसरी तरफ खाई। जो लड़का खुद ही जिम्मेदारी से भाग रहा है, उसके हाथों में कैसे बेटी सौंप दें! कैसे जिंदा मक्खी निगल लें? और दूसरी तरफ ये नादान लड़की! खाना-पीना छोड़कर काँटा हो गई है। इस धर्मसंकट से तुम्हीं उबारो ईश्वर!

"खाना खा लो पापा, रोटी सूख रहा है।" सीमा ने आवाज लगाई। कोई जवाब नहीं। नग्न चौकी पर अर्धनग्न औंधे लेटे पिता ने मौन साध लिया। शिवशंकर जी की दो खासियतें हैं। वे खाते जमकर हैं और सोते भी जमकर हैं। चाहे कितनी बड़ी विपदा आ

जाए, वो खाना समय पर खाते हैं। नहीं तो उनका पेट गुड़गुड़ाने लगता है। लेकिन आज पेट दबाकर सोए हैं मतलब अत्यधिक दुखी हैं।

"सुनाई नहीं दे रहा है, खाना ठंडा हो रहा है।" भूख भूल चुकी बेटी पिता को आदेश दे रही थी।

"हम खाना खा लें? पेट तो मेरा पूरा भर गया है। बेटी अन्न त्याग चुकी है और हम क्या भुक्खड़ राक्षस हैं? अब तो हम तभी पानी पिएँगे, जब तुम मेरे सामने खाना खाओगी।"

"हम खा लिए हैं, विश्वास कीजिए। ये देखिए डकार भी आ रहा है।"

"तुम ज्यादे होशियार हो न! तो हम भी तुम्हारा बाप हैं। अगर अभी इसी वक्त तुम मेरे सामने खाना नहीं खाओगी, तो हम कल ट्रेन के आगे कूद जाएँगे।"

"ओफ्फो! अब आप मुझे ब्लैकमेल कर रहे हैं। ये अच्छी बात नहीं है। ...ठीक है, ये लो मैं भी अपना खाना ले आई। अब खुश?"

"ये सब छूट देने का नतीजा है।" रोटी सेकते हुए माताजी ने बड़बड़ाना शुरू किया- "हम पहले ही कहते थे कि फोन पर बात करना अच्छा नहीं है। लेकिन आजकल का फैशन! छेका हुआ नहीं कि लबर-लबर बात करना चालू। एकदम खुल के कसमे-वादे... फोन पर ही मोहब्बत फरमाया जा रहा है! तुम्हीं जान, तुम्हीं प्राण, जीने-मरने की कसमें खाई जाती हैं। बाप रे बाप! लगता है सातों जनम का साथ है। एक हम लोग का जमाना था... शादी के बाद भी ठीक से बात नहीं करते थे। लाज था, डर था। लेकिन अब ये बेहया जमाना! भगवाने मालिक हैं।" खाने का कौर पानी से निगलती सीमा अचानक सुबकने लगी।

"ऐ चुप्प! बड़बड़ाना बंद करो। कब क्या बोलना है... दिमाग नहीं है?" पिताजी गरजे।

...ओय...ओय...सीमा बाथरूम की ओर भागी। अनिच्छा से ठूँसा हुआ सारा भोजन बाहर निकल गया। माथा पकड़कर वह वहीं बैठ गई। कमजोर शरीर में इतनी भी ताकत नहीं बची थी कि खुद से उठ सके। काँपते शरीर को सहारा देकर बिस्तर तक लाया गया। असहाय पिता रह-रह कर काँपती पुत्री को देखते थे और माथा पकड़कर रोने लगते। "तुम जो कहोगी वही होगा बेटी! अब तुम्हारा कष्ट नहीं देखा जाता हमसे। बस, तुम अपना जिद छोड़ दो।" आवेगी पिता, पुत्री के सामने झुकने को तैयार थे।

"नहीं पापा, हम कोई जिद नहीं कर रहे हैं। मुझे मालूम है आप बिना कहे मेरी हर माँग पूरी करते आए हैं। हम इसका फायदा नहीं उठाना चाहते। बस, हमें थोड़ा समय दीजिए। यादों को भुलाने में समय तो लगता ही है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। आप लोग ज्यादा परेशान मत हों।"

"मेरी समझदार बेटी! तुम इतनी बड़ी हो गई कि मुझे झूठा सांत्वना देने लगी...लो ये फोन और सुना दो उसे खुशखबरी।"

"ऐसा कुछ नहीं है पापा..." पीला चेहरा अपनी खुशी छुपाना चाह रहा था।

"मेरी जिद्दी बेटी!"

***

“काँच ही बाँस के बहँगीया....।”

संध्या के अर्घ्य के बाद छठ व्रतिनें गीत गाकर कोशी सजाती हैं। एक कलश के चारों ओर ईखों को बाँधकर खड़ा किया जाता है। इस संरचना के नीचे दीपों को वृत्ताकार रखा जाता है। घी का ठेकुआ, चावल और गुड़ के लड्डू और पूड़ियाँ प्रसाद के रूप में चढ़ाई जाती हैं। पूजास्थल की शुद्धता, व्रतियों का पवित्र मन और छठ के लयबद्ध मधुर गीत वातावरण को दैविक अनुभूति प्रदान कर रहे थे। अपने पलंग पर लेटा मैं एकटक दीपों की सजावट को निहार रहा था। गीत मेरे हृदय को शांति प्रदान कर रहे थे।

“ऐ छोटू! तुम कितना बड़ा आलसी है! सब कोई यहाँ पूजा कर रहा है और तुम वहाँ लेटकर आराम कर रहा है?” पड़ोस की एक आंटी ने मेरे आराम में विघ्न डाला।

“घाट पर भी नहीं गया था। पता नहीं कैसे अकेले मन लगता है?”

“संन्यासी आदमी है छोटू।”

“संन्यासी है? अभी देखियेगा उसका फोन बजेगा और वह उठकर भागेगा एकांत में।” ठेकुआ छानते हुए मोटी आंटी ने ऐसा चेहरा बनाया, मानो किसी खुफिया जानकारी को सार्वजनिक कर रही हो।

एक सम्मिलित खिलखिलाहट।

माँ ने हल्का-सा मुस्कराया- “चलो आओ छोटू, आकर प्रणाम कर लो कोशी को।”

“चलो, यहाँ आकर करो। पढ़-लिख के होशियार बन गया है!... न जाने कैसे यह अधर्मी मेरे परिवार में पैदा हो गया है!” फिर पिताजी ठंडी जमीन पर दंडवत प्रणाम की मुद्रा में लेट गए। उठकर कोशी को प्रणाम किया और दीये की ताप को छूकर माथे पर लगाया। ईखों की सजावट उन्हें कुछ अटपटी-सी लगी, सो गाँठ खोलकर वे फिर से बाँधने लगे। औरतें चुप होकर पिताजी की कला देखने लगीं। सचमुच, पाठक जी को अनुभव है, इ बच्चा लोग क्या जानेगा! पिताजी कुछ मंत्रोच्चारण करते हुए अपने रूम में आराम करने चले। मैं कोई झंझट नहीं खड़ा करना चाहता था, इसलिए अनिच्छा से हाथ जोड़कर भगवान के आगे खड़ा हो गया।

“ऐसे नहीं... पूरा लेटकर प्रणाम करो... लाज लग रहा है क्या?” माँ खुलेआम मेरी रैगिंग ले रही थीं। तभी मेरा फोन बजा और औरतों में खुसर-पुसर होने लगी। ये सीमा क्यों फोन कर रही है? क्यों बुझी हुई अग्नि को बार-बार हवा दे रही हो? क्यों मुझे चैन से अपनी यादें मिटाने का मौका नहीं देती? मैंने झूठ-मूठ का ऐसा भाव बनाया, जैसे मेरे किसी दोस्त का फोन हो। “हाँ अमर, बोलो क्या हाल है” कहता हुआ मैं बाहर निकल गया।

“पहचान नहीं रहे हैं क्या? मैं बोल रही हूँ।”

“मालूम है। यहाँ छठ पूजा के लिए औरतें इकट्ठा हुई हैं। उन लोगों को मजाक उड़ाने के लिए बस बहाना चाहिए। खैर, फोन क्यों किया? अब क्या फायदा?”

“फायदा? इन दो दिनों में मेरी क्या हालत हुई है, कभी आपने मेरे बारे में सोचा? आप मर्द लोग को भगवान ही कठोर दिल बनाते हैं। लेकिन एक लड़की के लिए... जान, मैं कोशिश कर के देख चुकी हूँ। अब कदम पीछे मोड़ना मुमकिन नहीं है।”

“लेकिन तुम्हारे मम्मी-पापा?”

“सबको सबकुछ मालूम चल ही गया है, तो छुपाने से क्या फायदा? मैंने निर्ल्लज की

भाँति उन लोगों से साफ कह दिया है कि मैं शादी करूँगी तो सिर्फ उनसे।"

"वो लोग मानेंगे?"

"मानेंगे कैसे नहीं? पापा तो लगभग मान ही चुके हैं, बस माँ को मनाना बाकी है। बस, आपको मेरी एक शर्त माननी होगी।... आपको घर का मोह त्यागना होगा। आप दिल्ली जाएँगे जल्द से जल्द। बोलिए!"

"तुम्हारी जानकारी के लिए बता दूँ कि मैंने टिकट बनवा भी लिया है। अगले महीने की आठ तारीख।... यकीन करो सीमा, उस रात के बाद से लगातार मैं अपनी बात पर पछता रहा हूँ। किस मनहूस घड़ी में मैंने तुमसे अलग होने की बात कही। मेरी काली जुबान! सच में किसी के महत्व का अंदाजा तभी लगता है, जब वह आपसे दूर चला जाए। एक-एक पल मैंने सिर्फ तुम्हारे बारे में ही सोचा है।"

"चुप रहिए! आपके नजर में तो हम घर की मुर्गी दाल बराबर हैं। जब जी में आया दिल दुखा दिया, जब जी में आया मना लिया। मानो हम कोई खिलौना हैं।"

"कुछ भी करो सीमा, लेकिन प्लीज फिर से तुम मेरी जिंदगी में आ जाओ। मेरी जिंदगी की किताब अधूरी है तुम्हारे बिना। कैसे मैं उन पलों को यादों से मिटा दूँ? छह महीने की अनगिनत यादें। मैं पागल हो जाऊँगा। नहीं-नहीं! मुझे फिर से वो बीते हुए पल लौटा दो सीमा! एक एहसान कर दो मुझ पर।"

"बस, भगवान का नाम लीजिए। भगवान ने चाहा, तो कल मैं आपको खुशखबरी सुना पाऊँगी।"

घास पर गिरी हुई ओस से मेरे पैर भीग गए थे। "अँधेरा में कहा घूम रहे हो छोटू! चलो आओ। देखो कितना 'सीत' गिर रहा है।" माँ की आवाज सुनकर एहसास हुआ कि बाहर कितनी ठंड है। माथे पर हाथ फेरा, बाल एकदम गीले हो रहे थे ओस से।

"अच्छा, मैं कल का इंतजार करूँगा।"

तुझसे नाराज़ नहीं ज़िंदगी

दिल्ली सिर्फ एक शहर नहीं है, यह दिल है हिंदुस्तान का। भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास की गवाह है दिल्ली। हजारों वर्षों से अनेक राजाओं और सुल्तानों के उत्थान और पतन की गवाह है दिल्ली। अनेक युद्धों और सृजन की साक्षी है दिल्ली। अनेक सपनों को हकीकत में बदला है इसने। कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था जब अपना रूप बदलने लगी, तो लोग रोजगार की तलाश में शहरों का रुख करने लगे। और दिल्ली इनमें सबसे प्रमुख थी। अगर ये कहा जाए कि भारत का इतिहास दिल्ली के इर्द-गिर्द घूमता है, तो गलत नहीं होगा। सचमुच, भारत की अनेकता में एकता वाली बात यहाँ आपको दृष्टिगोचर होगी।

तो मैं भी एक छोटा-सा सपना लेकर उतर गया सपनों के शहर की सरजमीं पर।

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन की विशालता और लोगों की गहमा-गहमी देखकर एक पल के लिए दिल में भय उत्पन्न हुआ। अनगिनत प्लेटफॉर्म और ओवरब्रिज। कहाँ जाएँ, किधर जाएँ! बस, लोगों के पीछे चल पड़ा। पहले बाहर निकला जाए, फिर देखा जाएगा।

“आप कहाँ हैं, अजमेरी गेट की ओर या पहाड़गंज की ओर?” ममेरे भाई ने पूछा। “मैं स्टेशन के बाहर खड़ा हूँ।” बाहरी आवाज को हथेली से दबाते हुए मैंने कहा। “देखिए, यहाँ पर दो एग्जिट हैं। एक अजमेरी गेट की ओर, दूसरा पहाड़गंज की ओर। किसी से पूछकर बताइए।”

दिल्ली की चौड़ी सड़कों पर तेज रफ्तार में भागता ऑटो। पहली बार इतनी ऊँची-ऊँची इमारतें देख रहा था। “ये आईटीओ है, ये यमुना ब्रिज है, ये लक्ष्मीनगर मेट्रो स्टेशन है। अभी बन ही रहा है। इसके चालू हो जाने से हम लोग को काफी सुविधा होगी।”

“जाना कहाँ है हम लोग को?”

“बस अब आ ही गए। शकूरपुर। क्या है कि दिल्ली में रेंट बहुत महँगा है। इसलिए थोड़ा आउटसाइड में लिए हैं।”

“लेकिन तुम तो खूब पैसा कमा रहे हो, सुना है,” मैंने कहा- “कोई बीस-पचीस हजार मंथली?”

“हा-हा-हा, ये दिल्ली है भैया। यहाँ थोड़ा-बहुत दिखावा करना पड़ता है।” सामान उतारते हुए उसने कहा- “धीरे-धीरे आपको सब मालूम पड़ जाएगा। वैसे आप से क्या छिपाना! बस किसी तरह गुजारा कर रहे हैं। आठ हजार महीना मिलता है। लेकिन क्या है कि MBA करके आठ हजार कमाओ, तो अच्छा नहीं लगता है। इसलिए बढ़ाकर बताना पड़ता है।”

“तो क्यों कर रहे हो ये जॉब? छोड़ दो।” मैंने कहा।

“एक्सपीरियंस! देखिए, बिना अनुभव के आपको कोई भी 20-25 हजार नहीं देगा शुरू में। बस दो-तीन साल का एक्सपीरियंस हो जाए, तो आप आसानी से जॉब स्विच कर सकते हैं।”

घर क्या था, एक कमरा था। तीन लड़कों ने मिलकर इस चार हजारी कमरे को किराए पर लिया था। यही कमरा बेडरूम भी था, किचन रूम भी और गेस्टरूम भी। जमीन पर दो मोटे-मोटे गद्दे बिछाकर उस पर बैचलर लोग अपनी दिनभर की थकान मिटाते थे। एक कोने में सब सामान अस्त-व्यस्त ठूँसा हुआ और दूसरे कोने में प्याज-लहसुन की गंध बिखेरता किचन। कमरे की गंदगी देखकर लगता था कि यहाँ रहने वाले या तो बहुत आलसी हैं या फिर स्वच्छता का महत्व इन्हें पता नहीं। “ठीक है। उतना बुरा भी नहीं है।” मैंने कहा।

“मतलब आपको पसंद नहीं आया। टेंशन मत लीजिए, धीरे-धीरे एडजस्ट हो जाइएगा। वैसे भी आपको दिनभर रहना थोड़े ही है। हम लोग भी सुबह आठ बजे निकलते हैं, तो रात आठ बजे ही घर आ पाते हैं। फिर खाना बनाना, खाना और सो जाना। दिन खत्म!”

“तो खाना भी खुद ही बनाते हो?”

“और क्या! अब इतने पैसे में मेड तो रख नहीं सकते। साथ ही हमारा मन भी लग जाता है। लैपटॉप पर मूवी लगा देते हैं और देखते-देखते खाना तैयार।”

“बहुत संघर्ष हैं भाई जीवन में”

“संघर्ष? अभी कहाँ? संघर्ष तो अब शुरू होगा आपका। वेलकम टू दिल्ली भैया!”

***

“नहीं चलेगा!” मेरा रेज्यूमे देखकर सिरे से नकार दिया अक्षत ने। “क्यों, क्या दिक्कत है इसमें?” मेरा आत्मविश्वास डगमगा गया था।

“ये इंजीनियर का रेज्यूमे है? लग रहा है, किसी स्कूल के विद्यार्थी का बायोडाटा है। इसमें कुछ भारी-भरकम शब्द होना चाहिए। आपका लक्ष्य क्या है, कैसे आप कंपनी के लिए उपयोगी साबित होंगे आदि-आदि। रेज्यूमे ऐसा होना चाहिए कि लोग आपमें इंट्रेस्ट लें। ऐसा रहेगा तो कहीं से कॉल भी नहीं आएगा।”

“तो क्या करना चाहिए?”

“आप टेंशन मत लीजिए। मेरे पास एक फॉरमेट है रेज्यूमे का। उसी को एडिट कर देंगे।” उसके बाद जनाब लैपटॉप लेकर बैठ गए। एक लंबी-सी, चार पेज वाली फाइल में जोड-तोड़ करने लगे। ऑब्जेक्टिव इतना लंबा था कि गलती से अगर कोई ऑब्जेक्टिव पूछ ले, तो मैं नहीं बता पाता। उसके बाद सिनॉप्सिस, एकेडमिया, आईटी क्रेडेंशियल, एचीवमेंट, पर्सनल डॉजियर जैसे भारी-भरकम शब्द डाले गए। “ये हो गया तैयार आपका रेज्यूमे। इसको पेन ड्राइव में ले लीजिए और कैफे जाकर जितना भी नौकरी वाला साइट है, सब पर डाल दीजिए।”

“थैंक-यू यार। तुमने बहुत हेल्प किया, लेकिन एक एहसान और कर दो... प्लीज ऑनलाइन रजिस्टर करवा दो।”

“क्या भैया, आप इंजीनियरिंग कैसे कर लिए? आपको नेट चलाना नहीं आता?”

“अरे, इतना जलील मत करो। आता है, बस थोड़ा हेल्प चाहिए।”

“देखिए भैया, बुरा मत मानिए, लेकिन आप बहुत दब्बू किस्म के आदमी हैं। थोड़ा बोल्ड बनिए। ये दिल्ली है... दिल्ली छोड़िए, कहीं भी आप सर्वाइव नहीं कर पाइयेगा इस तरह। हर जगह आपको उँगली पकड़कर चलाने वाला नहीं मिलेगा। खुद से करना पड़ता है। रिस्क लेना पड़ता है।”

“समय की बात है। आज मेरा समय खराब चल रहा है, तो सबको मौका मिला है मुँह खोलने का। तुम क्यों पीछे रहोगे? तुम भी बोल लो।”

“आप फिर से बुरा मान गए। आप सच में बहुत इमोशनल आदमी हैं। मैं ये कहाँ कह रहा हूँ कि मैं हेल्प नहीं करूँगा, मैं बस ये चाहता था कि आप थोड़ा आत्मनिर्भर बनें। खैर, चलिए कोई बात नहीं।”

***

इश्क में हारे इंसान ने ये शपथ तो जरूर ली थी कि दिल्ली पहुँचकर अपनी मंगेतर से कम बातें करेगा लेकिन...। लेकिन ऐसा हो न सका। इश्क के तूफान में कमजोर इरादे ढह गए। एसटीडी कॉल बहुत महँगे होते थे उस समय। इसलिए मैं किसी ऐसे ऑफर की तलाश में था, जो कॉल दर कम कर सके। रिलायंस ने ये अवसर दिया। 30 पैसे प्रति मिनट की दर से बात हो सकेगी एक पैक भराकर। “वाऊ” कहा था सीमा ने।

“लेकिन हमारी बातें कम होंगी और आप सिर्फ अपने काम पर फोकस करेंगे। ओके?” आगाह किया उसने।

“मालूम है। लेकिन ये तुम हो, जो मुझे बार-बार डिस्टर्ब करती हो, मैं नहीं।”

“अच्छा! तो मैं आपको डिस्टर्ब करती हूँ ना? ठीक है... कोई सफाई नहीं... अब करना मेरे ठेंगा से बात।” ये लड़की लोग का नखरा! स्साला बात करो तो लेक्चर देंगी कि कॅरिअर पर फोकस करो और बात न करो तो ‘इग्नोर कर रहे हो’ का आरोप। भाड़ में जाओ। ऐसे भी जिंदगी में बहुत टेंशन है।

चार लड़के साथ रह रहे हों, तो आपसी सामंजस्य के लिए एक संविधान की जरूरत होती है। लेकिन ऐसे किसी स्पष्ट संविधान के न होने से रसोई-कार्य दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा था। शाम होते ही सबकी देह में दर्द होने लगता था। ऊपर से जाड़े का मौसम। सब अपने-अपने बिस्तर में घुसे इस इंतजार में रहते थे कि कोई उठकर काम शुरू

करे। आखिकार जब नौ बज जाते, तो खिचड़ी बैठा दी जाती। लेकिन रोज-रोज खिचड़ी तो नहीं खा सकते। और रोटी बनाना सिर्फ मुरली को आता था या फिर अन्य लोग बनाना नहीं चाहते थे। लेकिन एक दिन मुरली ने बगावत कर दी- "रोज-रोज का हम ठेका लिए हैं क्या? शाम होते ही सब मुँह छुपाके सूत जाता है और हम यहाँ नौकर जैसा खटते रहते हैं। आज से सब अपना-अपना रोटी खुद बनाएगा।... नहीं आता है तो हम क्या करें? हमसे नहीं होगा, बस!"

सन्न रह गए सब। उम्मीद नहीं थी ऐसे विद्रोह की। शांतचित्त से अक्षत ने समझाना शुरू किया- "देखो मुरली, जहाँ तीन-चार लोग साथ रह रहे हों, वहाँ थोड़ा-बहुत कंप्रोमाइज करना पड़ता है। ऐसे छोटी-छोटी बातों पर रोष दिखाना अच्छा नहीं है। चलो, रोटी तुम बनाते हो, लेकिन सब्जी रोज हम बनाते हैं। डेली। दिखाई देता है?"

"तुमको नहीं बोल रहे हैं। ये विष्णु क्या करता है? और ये तुम्हारे भैया खाली बैठे-बैठे खाते हैं। शर्म है इन लोगों को।"

"फालतू मत बोलो मुरली। मेरे भैया सिर्फ कुछ दिन के लिए यहाँ आए हैं। एक-दो महीने के लिए। इनसे काम की बात मत करो।"

मेरा धैर्य अब टूट रहा था- "क्या कहा, मैं खाली बैठा रहता हूँ? ये प्रतिदिन बर्तन कौन साफ करता है? बाजार से सब्जी कौन लाता है? आज तक कभी पैसा का हिसाब हुआ है, कितना दिन हम सामान लाए हैं! और बाहर जो कचरा भरा रहता था, अब दिखाई देता है? कौन फेंकता है? रूम इतना साफ-सुथरा कैसे रहता है, सोचा है कभी?"

अपने-अपने विचारों में खोए सभी चुपचाप बैठे रहे। विष्णु चुपचाप उठा और आटा गूँधने लगा। मुरली उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करने लगा। "चल हट यहाँ से स्साला चिरकुट कहीं का। आज के बाद कोई काम नहीं करोगे तुम समझा। चार आदमी का रोटी तो हम ऐसे चुटकी बजाके बना देंगे। समझा क्या है बे तुम हमको?"

"गुस्सा हो गए क्या भाई? लाओ बरतन दो... माफ करो यार, गलती हो गई।" मुरली अब विष्णु के कंधे सहला रहा था, शायद डर से। विष्णु का गठीला बदन देखकर कोई भी डर जाता। अब दोनों मिलकर हँस-हँस के रोटी बना रहे थे। मुरली बेलता, सेकता और विष्णु तवे से रोटी उतारकर सहेजता। आपसी सामंजस्य से खाना बनने लगा।

आठ रोटी और एक लोटा पानी पेट में घुसाने के बाद विष्णु को ये एहसास हुआ कि सब्जी में नमक कम है। "अरे नमक लाओ, फीका-फीका खाने का आदत हो गया है तुम लोग को। ...अब ठीक है।"

"हा-हा-हा, इसीलिए विष्णु का खुराक कम हो गया है, अब समझ में आया।" अक्षत ने मजाक किया।

"स्साला खाते हैं तो अपना पेट में। तुम्हारे बाप का क्या जाता है।"

"सही बात। तुम भी खाओ, कोई रोक है क्या?" मैंने विष्णु का समर्थन किया।

"वाह प्रकाश भैया," विष्णु ने एक धौल जमाई मेरी पीठ पर- "और आजकल भौजी का फोन नहीं आ रहा है, कोई बात है क्या?"

"आप लोग की शादी तय हो गई है क्या?" मुरली ने जानना चाहा।

"ऐसा ही समझो। अगले साल जून-जुलाई में उम्मीद है।"

"लेकिन आप अभी शादी क्यों कर रहे हैं भैया?" अक्षत ने टोका।

“तुम्हारी माँ ही ये शादी करवा रही हैं।” मैंने कहा।

“ठीक है।” अक्षत ने बोलना शुरू किया- “लोगों का तो काम ही है शादी करवाना, लेकिन आप क्या बच्चे हैं? आप को अपनी स्थिति मालूम है। आप खुद अपने पैर पर नहीं खड़े हैं, परिवार कैसे संभालिएगा। आश्चर्य है, आपने शादी के लिए हाँ कैसे कर दिया?”

“अबे क्या तुम भैया को जलील कर रहे हो! छह महीने में काम नहीं मिलेगा? ज्यादा टेंशन मत लीजिए प्रकाश भैया। आप दिल्ली को स्वीकार कर लीजिए, तभी दिल्ली आपको स्वीकार करेगी। शायद मैं गलत होऊँ, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि आप यहाँ एडजस्ट नहीं हो पाए हैं। ठीक है, आप दौड़-धूप कर रहे हैं, इधर-उधर प्रयास भी कर रहे हैं, लेकिन आप में वो जज्बा नजर नहीं आता जो होना चाहिए।”

“मानना होगा आपकी पारखी नजर को। सच में मुझे दिल्ली से कभी लगाव नहीं हुआ,” मैंने कहा- “यहाँ की भागती-दौड़ती जिंदगी मेरे लायक नहीं। हम ठहरे छोटे गाँव के आदमी। लोगों से मिलजुलकर रहने की आदत है। यहाँ तो जैसे लोगों को बात करने में भी पैसा लगता है। कोई एड्रेस पूछो, तो मुँह ऐसे बनाएँगे जैसे एहसान कर रहे हो। ...ये दौड़ते हुए बस पर चढ़ना, रोड पार करना। अरे भाई, जिंदगी है कि मशीन! बस और मेट्रो में बैठकर ऑफिस के काम करते हो। एक साथ दो-दो फोन पर डील करते हो। ये बैल वाली जिंदगी! हमसे नहीं होगा।”

अक्षत- “वही न हम आपसे बोले थे कि थोड़ा चेंजिंग लाइए खुद में। दुनिया आपके हिसाब से नहीं बदल सकती, लेकिन आप बदल सकते हैं दुनिया के हिसाब से। नौकरी आपको चाहिए, दिल्ली को नहीं।”

मैं- “कोशिश तो कर रहे हैं, अपने आप को भूलकर नकली नकाब ओढ़ने की। देखिए, क्या होता है!”

अक्षत- “बहाने बनाने वालों को बहाने मिल ही जाते हैं।”

***

सड़कों पर गतिशील जिंदगी से बेखबर, फुटपाथ पर घिसटता वह युवक। डेढ़ महीने गुजर गए देखते-देखते। वही सुबह, वही शाम और वही रात। बस दिन गुजर रहा है। कोई नयापन नहीं, कोई खुशखबरी नहीं। कब होगा मेरे संघर्ष का अंत! कभी-कभी तो लगता है कि नौकरी कभी मिलेगी ही नहीं। चार-पाँच इंटरव्यू देने के बाद इतना तो स्पष्ट हो गया है कि ये सेशन लेट का मुद्दा बड़ा नासूर बनने वाला है। ऊपर से डिग्री मिलने के बाद भी एक साल का गैप! क्या किया इतने दिन, हर जगह यही सवाल। पढ़ाई की, तैयारी की, इस जवाब से कोई संतुष्ट नहीं होता। सबको एक्सपीरियंस चाहिए। कहाँ से लाएँ एक्सपीरियंस? इसी के लिए तो नौकरी ढूँढ़ रहे हैं।

“आप कहीं बाहर से आए हो क्या साहब?” चाय वाले की आवाज से मैं सतर्क हुआ।

“क्यों, ऐसा क्यों लगा आपको?”

“आपको रोज देखता हूँ, यहाँ चौराहे पर आते हो, फिर खड़े होकर कुछ सोचते हो और फिर वापस लौट जाते हो। ऐसा अकेले रहने वालों के साथ होता है।”

“हाँ झारखंड से आया हूँ। सच में, यहाँ मन नहीं लगता।”

“मैं भी झारखंड से हूँ। गिरीडीह का नाम सुने हैं?...वहीं से हूँ....क्या कीजिएगा

नसीब जहाँ ले जाए।...मैं तब तेरह साल का था, जब दिल्ली भागने का जुनून सवार हुआ। दोस्तों से मालूम हुआ कि दिल्ली में पैसा है, मौज-मस्ती है, पढ़ने-लिखने का झंझट नहीं। बर कमाओ और उड़ाओ। तो एक दिन चुपके-से मैं निकल पड़ा घर से। फिर क्या था, तब से दिल्ली का ही होकर रह गया। शुरू-शुरू में फैक्ट्री में काम किया, फिर जब पैसा हो गया तो अपना छोटा-सा दुकान खोल लिया।... हाँ, परिवार को भी अब यहीं रखता हूँ।"

"बुरा ना मानो, लेकिन ये काम तो आप वहाँ भी कर सकते थे"

"यहाँ बिजनेस ज्यादा है। दिनभर में हजार कमा लेता हूँ। झारखंड में इतना कहाँ संभव है?... वैसे आप किस विभाग में हो?"

"मैं?... मैं बेरोजगार हूँ। पढ़ा-लिखा, डिग्री वाला बेरोजगार!"

सोच में पड़ गया मैं। कहाँ ये अनपढ़-गँवार और कहाँ मैं इंजीनियरिंग स्नातक! ये रोज के हजार कमाता है, मतलब महीने के 30 हजार। और मैं 10-12 हजार की नौकरी खोज रहा हूँ! लानत है मेरी शिक्षा-दीक्षा पर। सीमा ने एक बार मजाक में कहा था कि आप चाय भी बेचोगे, तो भी मैं आपसे ही शादी करूँगी। लगता है, अब सच में चाय ही बेचनी पड़ेगी! मेरे इस प्रस्ताव को सबने एक सिरे से खारिज कर दिया।

अक्षत- "पागल हो गए हैं आप? भाई-बाप का इतना पैसा खर्च करके और इतना डिग्री लेके आप होटल खोलिएगा?"

मैं- "क्यों, क्या दिक्कत है? सूट-बूट और टाई लगाकर आठ हजार महीना कमाने से तो अच्छा है न!"

विष्णु- "अरे महाराज! नाम हँसाइएगा क्या इंजीनियर लोग का? कुछ तो शरम कीजिए।"

मैं- "यही तो दिक्कत है हमारे समाज की, कि हम समाज के बारे में ज्यादा सोचते हैं। वैसे भी बहुत से इंजीनियर दूसरे क्षेत्रों में भी अच्छा नाम कमा रहे हैं। चेतन भगत को ही ले लो। अनिल कुंबले और राहुल द्रविड़ भी इंजीनीयर हैं।"

अक्षत- "क्या बकवास है ये। ये लोग शौक से दूसरे क्षेत्रों में गए। आप मजबूरी में जा रहे हैं। अंतर समझ रहे हैं?"

मुरली- "वैसे भी, आपसे होटल-वोटल नहीं चलेगा। इसमें बहुत मेहनत और प्रबंधन की जरूरत होती है। आप कहाँ अंतर्मुखी आदमी! आपसे होगा?"

मैं- "सच में, मेरे लायक सिर्फ सरकारी नौकरी बना है। हमको ऐसा काम चाहिए, जिसमें कोई काम ही न हो।"

अक्षत- "सरकारी नौकरी का सपना देखना बेकार है। एक तो आप पंडीजी हैं। अगर नहीं भी होते, तो भी आरक्षित वर्ग में भी बहुत कंप्टीशन है। इसके पीछे समय बर्बाद करना बेकार है।

***

ये यकीन करना मुश्किल था कि आज सात दिन हो गए सीमा से बात किए हुए। एक वो दिन था, जब दिनभर में चार-पाँच घंटे बातें हो जाती थीं। बातें खत्म ही नहीं होती थीं। फोन रखते ही फिर से बात करने की छटपटाहट। और अब ये दिन हैं, सप्ताह में एक-दो

दिन बात हो पाती है। बातों की कमी हो गई है या इच्छा की, पता नहीं। बस एक औपचारिकता। उसका बनावटी उत्साह से 'हाय' कहना और हँसकर 'आईएम फाइन' कहना साफ समझ में आ जाता है। चलो, अच्छा ही है। धीरे-धीरे मेरी जिंदगी से दूर हो जाना चाहती हो, तो हो जाओ!

"क्या हाल हैं जनाब के? आप तो एकदम भूल गए हैं मुझको।" उसने कहा।

"मैं?... मुझे लगाता है कि तुम अब मुझसे इंट्रेस्ट नहीं लेती। मेरी बातें शायद तुम्हें बोर करती हैं। इसीलिए।... वैसे तुम भी कहाँ फोन करती हो?"

"मैं इसलिए फोन नहीं करती कि आपको डिस्टर्ब नहीं करना चाहती। मुझे मालूम है, आपके पास और भी टेंशन हैं।... ऐसे में आपको परेशान...और क्या कहा आपने कि मैं इंट्रेस्ट नहीं लेती आप में? ये तो आप हो कि बस हाँ-हूँ करते हो। अगर मैं बात ना निकालूँ, तो आपको बात भी न मिले। बुद्धू!"

"आज पापाजी से बात हुई थी।" मैंने कहा।

"क्या बात?"

"कह रहे थे कि वापस आ जाओ। मैंने उन्हें बताया कि बिना पैसा के यहाँ नौकरी मुश्किल है। प्लेसमेंट एजेंसी वाला चालीस हजार माँग रहा है। एकदम गारंटी के साथ नौकरी देगा। तो पापाजी एकदम-से भड़क गए। बोलने लगे कि तुमसे कुछ नहीं होगा। देख लिए तुम्हारा टैलेंट, तुम वापस आ जाओ, बहुत पैसा बरबाद कर चुके, अब और नहीं।"

"ऐसा कैसे कह सकते हैं वो, आपके पिता हैं वो। ठहरिए, मैं अपने पापा से बात करती हूँ। हो जाएगा इंतजाम, आप फिक्र मत करिए।"

"प्लीज ऐसा मत करना। अभी किस रिश्ते से मैं उनसे पैसा ले सकता हूँ?"

"आपके ससुर हैं वो। कोई शक?"

"अभी नहीं हैं। जब होंगे, तब देखा जाएगा।"

"आपको क्या लगता है कि हमारी शादी नहीं होगी?... अभी आप मुझे जानते नहीं हैं। मैं एक बार कमिटमेंट कर दूँ, तो उसके बाद अपने-आप की भी नहीं सुनती।"

"इ स्साला सलमान खान!"

***

9 फरवरी 2010 की वो खुशनुमा सुबह। यूँ ठंड तो कम हो गई थी, फिर भी धूप में बैठना अच्छा लग रहा था। छत की एक कुर्सी पर बैठा मैं शहर की खूबसूरती को निहार रहा था। एक गतिशीलता है, ताजगी है सुबह में। तेज कदमों से भागते नौकरीपेशा लोग, ट्यूशन-स्कूल के लिए निकलते रंग-बिरंगे बच्चे। बड़े-बड़े बस्तों को संभालते, हाथ हिलाते बच्चे अभिभावक की नजरों से ओझल हो जाते हैं। स्कूटी पर उड़ती महिलाएँ स्वतंत्रता का एहसास करती हैं। चिड़ियों को देखो, वो भी बेचैन हैं, भोजन की तलाश में। एक मैं ही हूँ खाली बैठा, निठल्ला! फोन की आवाज से मेरा ध्यान भंग हुआ। आज भाभी ने कैसे याद किया, आश्चर्य है!

"हाँ सुनिए ना, पापाजी का तबियत बहुत खराब हो गया है। आप जल्दी से आ जाइए।"

“क्यों, क्या हुआ?” मैं हड़बड़ा गया।

“आज चाँपाकल पर नहा रहे थे पापाजी कि अचानक से फिसलकर गिर गए। उसके बाद से उनको होश नहीं आया है। यहाँ का डॉक्टर राँची रेफर कर दिया है। शायद दिमाग में गंभीर चोट लगी है। अभी हम लोग राँची के लिए निकलने वाले हैं। आप भी आ जाइए जल्दी से।” एक साँस में कहती चली गईं वो। कुछ कहने-पूछने के लिए बचा ही नहीं। बस, अब निकलना होगा जल्द से जल्द किसी भी तरह।

इतनी जल्दी रिजर्वेशन मिलना तो मुश्किल था, इसलिए जनरल बोगी में सवार हो गया। दिल्ली से राँची तक की मैराथन यात्रा जनरल बोगी में! सोचकर ही दिल बैठ जाता है। खैर, जाना तो है ही। आधी रात को बैठना नसीब हुआ, तो मालूम हुआ कि आराम क्या चीज है! सच में, भारत की एक बड़ी आबादी इसी तरह से सफर करती है। आदमी के ऊपर आदमी। सामान के ऊपर आदमी। गलियारे में लेटे आदमी। बाथरूम में पसरे आदमी। अगर आपको भारत की गरीबी देखनी हो, तो जनरल बोगी में चढ़ जाइए। वो गंदा-सा मटमैला बूढ़ा, खुलेआम स्तनपान कराती एक अस्त-व्यस्त महिला, पास में लेटे तीन-चार बेडौल बच्चे, अनियंत्रित शोरगुल, बहस, खिचखिच। मन में एक विकर्षण-सा उत्पन्न हुआ। अगर जाना अत्यावश्यक नहीं होता, तो शायद मैं उतर जाता ट्रेन से।

सुनसान रास्तों पर चुपचाप एक वृद्ध चला जा रहा था और उसके पीछे यंत्रवत मैं। मैं चाहता था कि दौड़कर उसके पास चला जाऊँ और उसका चेहरा देख लूँ। लेकिन मेरे पाँव दौड़ नहीं पा रहे थे। आवाज देनी चाही मैंने, पर जुबान न खुले। चलते-चलते वह बूढ़ा जंगल में एक गुफा के पास रुका। गुफा के मुख पर रखे पत्थर को हटाकर वह गुफा में प्रवेश कर गया और उसने अंदर से अपने-आप को बंद कर लिया। मैं उस पत्थर को हटाने जा ही रहा था कि एक महिला की आवाज पीछे से आई, देखा तो माँ खड़ी थीं। उनकी आँखों में आँसू थे और आवाज में कंपन- “मत हटाओ उस पत्थर को। पाप लगेगा।”

“लेकिन मैं देखना चाहता हूँ कि इसके पीछे कौन छुपा है” और फिर मैं उस पत्थर को हटाने लगा। लेकिन वह टस-से-मस नहीं हुआ। अचानक मुझे एहसास हुआ कि वह पत्थर मेरे सीने पर रखा हुआ है। लाख प्रयासों के बाद भी मैं हिल नहीं पा रहा हूँ। हैरान-परेशान, पसीने से तर-ब-तर। अचानक से नींद खुल जाती है।

“ऐ, ठीक से बैठो।” बगल वाले सहयात्री ने झिड़का। मैं भौंचक्का-सा सबके चेहरे देखता रह गया।

तेज कदमों से अस्पताल के परिसर को पार करते समय ऐसा महसूस हुआ कि काश, मेरे पास पंख होते तो उड़कर पहुँच जाता। एक जगह से रोने की आवाज आ रही थी। मन अनिष्ट की आशंका से घबरा उठा। लेकिन नहीं, ये कोई और लोग थे। सामने से चाचाजी आते दिखाई दिए। जैसे ही मैं उनके पैर छूने के लिए झुका, वो पीछे हट गए। मेरे चेहरे पर उभरते संशय का समाधान करते हुए कहा- “बुरी खबर है। ब्रेन हैमरेज हो गया था। डॉक्टर्स ने तो अपनी तरफ से पूर्ण प्रयास किया लेकिन...।” और फिर मेरे कंधे पर हाथ रखे चाचा उस रूम में ले गए, जहाँ श्वेत वस्त्रों में पिताजी का पार्थिव शरीर पड़ा हुआ था। सत्य को स्वीकार करने में समय लगता है। कुछ देर तक मैं अपलक उन्हें निहारता रह गया। क्या ये सच है? अभी कल सुबह ही तो बात हुई थी और आज...। अचानक से सिर से पिता का साया हट गया। और वो भी तब, जब मैं उनसे दूर था। बहुत दूर। क्यों किया

ऐसा आपने पिताजी? आखिरी वक्त में भी मैं आपके पास नहीं था, कितना बदनसीब हूँ मैं! ये सच है कि हमारे रिश्ते कभी सामान्य नहीं रहे। लेकिन एक मौका तो देते मुझे माफी माँगने का। इस कदर रूठकर आपने मुझे बहुत छोटा कर दिया। सच कहूँ, तो मुझे अच्छा लगता था आपका विरोध कर, आपको तकलीफ देकर। ये एक तरह की बदले की भावना थी कि बचपन में आपने मुझे प्यार नहीं दिया, तो जवानी में मैं आपको सुख नहीं दूँगा। लेकिन आज अपने प्रतिद्वंद्वी के कृशकाय शरीर को देखकर मैं ग्लानि से भर उठा। किससे बदला ले रहा था मैं? पिचके हुए गाल, धँसी हुईं आँखें, निकली हुईं हड्डियाँ। लगा जैसे शरीर का सारा माँस निकाल लिया गया हो, केवल अस्थियों का ढाँचा बचा हो। दया, अफसोस और श्रद्धा, ये तीन भाव एक साथ उभरे मन में। सिसकियों पर नियंत्रण रखते हुए मैंने पूछा- "माँ कहाँ हैं?"

"अभी माँ को बताया नहीं गया है। समझ में नहीं आता कैसे बताया जाए?... अब भी वो उम्मीद में हैं कि कोई चमत्कार हो जाए।"

बाहर बरामदे में लकड़ी की एक कुर्सी पर बैठी उस वृद्ध महिला को देखकर मैं अपना नियंत्रण खो बैठा। शायद आँखें बंद कर वह किसी ईश्वर से कोई फरियाद कर रही थी। इतने दिनों बाद माँ से मिला भी तो किस परिस्थिति में? पिछले 24 घंटे से अपने किस्मत से लड़ती उस कमजोर और थकी हुई माँ से मैं किसी बच्चे की भाँति लिपट गया- "ये क्या हो गया माँ?"

श्मशान में सिर्फ शव ही नहीं जलते, वहाँ उपस्थित लोगों के ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, लोभ आदि सभी मानवीय अवगुण भी जल जाते हैं। ये वो जगह है, जहाँ इंसान विकार रहित हो जाता है। जीवन की तुच्छता का एहसास हो जाता है। जिस पिता को मैंने हमेशा स्वार्थी और मतलबी समझा, आज किसी बरगद के वृक्ष समान लग रहे थे। लगा जैसे सामने कोई विशाल वृक्ष कटकर गिर पड़ा हो और मुझे जिंदगी के मरुस्थल में छोड़ दिया गया हो, धूप और ताप सहने के लिए। मैं फिर से उस छाँव में लेटना चाहता था, मुँह छिपाकर रोना चाहता था। छोटे बच्चे की तरह लापरवाह, उन्मुक्त कंठ से, उच्च स्वर में। मैं लिपट जाना चाहता था उस मृत, निर्जीव शरीर के आगोश में। ...अग्नि की लपलपाती ऊँची लपटों से घिर गया माटी का शरीर। चटकती हुई लकड़ियों की आवाज वातावरण की भयावहता को और बढ़ाने लगी।

"यही जीवन है। यही नियति है। कितना भी हाय-हाय कर लें लोग, खाली हाथ ही जाना है। ...मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जाना है।"

"लेकिन इंसान भी क्या करे? एक पेट भी तो साथ में लेकर पैदा होता है। इसी पेट के लिए तो वह सारे कर्म-कुकर्म करता है।... पापी पेट।"

"...लेकिन पेट पापी नहीं होता है पंडीजी, पापी तो ये असंतोषी मन है। इसकी अभिलाषा कभी पूरी नहीं होती।"

"सब कोई एक जैसा नहीं होता। पाठकजी कुछ अलग किस्म के थे। मोह-माया से अलग।... हमको लगता है कि इधर कुछ दिनों से वे बिल्कुल ही विरक्त हो गए थे। एकदम शांत-शांत से रहते थे। खुद में खोए हुए।"

"बीमारियों से परेशान थे। परहेज तो बहुत किया उन्होंने, लेकिन भगवान की मर्जी। अभी क्या उम्र थी उनकी। बहुत होंगे तो 65 के होंगे। हमको देखिए, 70 से ज्यादा हो गए

हैं, फिर भी अभी दो किलोमीटर रोज सायकिल चलाते हैं। क्या तेल, क्या मसाला, सब खाते हैं। कभी कुछ नहीं हुआ।"

"ठीक है, इंसान कम जिए या ज्यादा, कोई बात नहीं। जब तक जिए सच्चाई से जिए। सत्कर्म करे। आखिर, अंत में भगवान के पास ही हाजिरी लगाना है। यहाँ तो आप दूसरों को धोखा दे सकते हैं, लेकिन 'वहाँ' एकदम सही इंसाफ होगा।" एक चिड़िया उड़ती हुई आई और तालाब की सतह को छूती हुई फुर्र हो गई। मेरी नजरें अग्नि शिखाओं से हटकर तालाब की वृत्ताकर तरंगों की ओर चली गईं। सच में, इंसान का चरित्र-चित्रण दो तरह से होता है। एक, जब वह जिंदा होता है और दूसरा, जब वह मृत होता है। ये वही घनश्यामजी हैं, जो कहते थे कि पाठकजी झूठ-मूठ बीमारी का ढोंग करते हैं। कुछ नहीं हुआ है उनको। सहानुभूति पाने के लिए ये सब करते हैं। वही वैद्यनाथ के भी कुछ अच्छे विचार नहीं थे पाठक जी के प्रति। उनका मानना था कि पाठकजी उतने ईमानदार नहीं हैं, जितना वे 'शो' करते हैं। चलिए, उन्होंने रिश्वत ली हो या नहीं, लेकिन कई बार अपना काम निकालने के लिए रिश्वत दी तो है।

***

कुछ कहने के लिए अब बचा नहीं था, न ही सुनने-समझने के लिए। कहाँ तो अगले चार महीने में हमारी शादी होने वाली थी और कहाँ ये अनहोनी हो गई। कई दिनों के बाद आज सीमा का फोन आया था। हाथ में फोन लिए मैं असमंजस में था कि क्या बोलूँ। न ही उधर से कोई आवाज आ रही थी, न ही इधर से मैं कुछ सोच पा रहा था।

"उत्तरी आप ही लिए हैं?" कुछ देर की खामोशी के बाद उसने पूछा।

"हूँ..."

"आप कर पा रहे हैं इतना नियम-कानून?... मतलब कि आप ठहरे लापरवाह आदमी और इसमें काफी सख्त दिनचर्या का पालन करना पड़ता है। पूरे श्रद्धा विश्वास के साथ।"

"मालूम है। वैसे तो मैं इन चीजों पर विश्वास नहीं करता, लेकिन पता नहीं क्यों आजकल मेरे मन में श्रद्धा उमड़ती जा रही है। जब मैं पीपल पर टँगे कलश में पानी देता हूँ, तो लगता है जैसे मैं उनको ही पानी दे रहा हूँ। जब मैं शाम को दीप जलाता हूँ, तो लगता है जैसे वो मेरे सामने खड़े हैं और मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। कल रात को तो मुझ आभास हुआ, जैसे पापाजी ध्यान की मुद्रा में बैठे हैं अपने चिर-परिचित जगह पर। एक पल के लिए तो मैं भूल गया कि ये कल्पना है, हकीकत नहीं।"

"होता है। ऐसे परिस्थिति में आपको सावधान रहने की जरूरत है। आप अकेले मत सोइएगा। और साथ में लोहे का कोई सामान जरूर रखिएगा।"

"क्या पागलपन है! मैं इन सब चीजों को नहीं मानता। ...मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया था, बस एहसास हुआ था।"

"प्लीज! कुछ चीजों पर बहस नहीं करना चाहिए। बस बुजुर्गों के कहे अनुसार चलना चाहिए।...पवित्र मन से दिनचर्या का पालन करते रहिए।"

"और कोई आदेश?"

"आदेश!... आदेश मैं क्या दूँगी? ...पता नहीं इस माहौल में ये बात कहनी भी चाहिए या नहीं, लेकिन आपके परिवार वाले शायद अब एक साल तक हमारी शादी के बारे में

नहीं सोचेंगे। अधिकतर लोग ऐसी घटना के बाद सालभर कोई शुभ काम नहीं करते हैं। ...कल पापा बहुत चिंतित हो गए थे। बोलने लगे कि अब तो शायद सालभर शादी भी न हो पाए। एक तो लड़का कुछ करता नहीं है, उसके लिए सालभर इंतजार! नौ महीना तो ऐसे ही हो चुका है छेका हुए। पापा को कुछ समझ नहीं आ रहा कि क्या किया जाए, क्या कहा जाए? इस माहौल में शादी की बात कैसे की जाए?"

"मेरे लिए तो शादी के बारे में सोचना भी पाप है। ...जिस माँ की दुनिया उजड़ गई, उनसे मैं शादी की बात करूँ? प्लीज फोन रखो।... अब जो होना है, देखा जाएगा।"

"गुस्सा क्यों होते हैं? मैंने वही कहा जो घरवाले कह रहे हैं। ...बस टाइमिंग गलत था कहने का।"

***

"ये सरासर पाखंड है, आडंबर है। लूट रहे हैं ये लोग श्राद्ध के नाम पर।" मैं बौखलाया हुआ था पंडितों की मनमानी माँगों से। "ये कहाँ का नियम है, इतना सारा सामान भी दो, पैसा भी दो, और दबके उनकी बात भी सुनो।"

"करना पड़ता है। अभी तुमको क्या मालूम है! इन सब चीजों में बहस नहीं करना चाहिए। खुशी-खुशी जो कहा जाए, दान कर देना चाहिए। बल्कि ज्यादा ही कर दीजिए, कम नहीं। इससे मृतात्मा को शांति मिलती है। आखिर पिता ने इतना कुछ किया है, तो उनके लिए थोड़ा दान-धर्म नहीं कर सकते?" चाचा ने समझाने की कोशिश की।

"है ही। माता और पिता का ऋण कभी कोई चुका पाया है?" मामा ने उनका समर्थन किया।

"बात पैसे की नहीं है। मेरा विरोध इन प्रथाओं से है। पंडितों के मनमाने डिमांड से है। हर विधान के बाद दक्षिणा की माँग! बात अगर श्रद्धा की ही है, तो फिर जबरदस्ती क्यों? नहीं, पाँच हजार से एक पैसा कम नहीं लगेगा। और फिर ये धमकी कि पैसा पूरा नहीं दिए तो मृतक की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। ये लोग कौन होते हैं आत्मा को स्वर्ग या नरक भेजने वाले? अगर किसी ने जीवनभर पाप ही किया है, तो क्या पैसा और सामान देकर वह स्वर्ग चला जाएगा? या किसी के पास पैसा नहीं है, तो वह नरक चला जाएगा? वाह रे इंसाफ!"

"देखो भाई, इतना उत्तेजित मत हो। कुछ चीजों को करना पड़ता है समाज के लिए। ...वैसे भी इनका रोजी-रोजगार भी चलना चाहिए न! यही तो मौका होता है इन लोगों (पंडितों) के कमाने का। इनका भी घर है, परिवार है। जीने दो इनको भी।" चचेरे भैया हल्के मूड में समझाने की कोशिश कर रहे थे।

"यही वजह है कि पंडित लोग अब पंडिताई छोड़ रहा है। नए जमाने के लोगों को इन सब चीज पर विश्वास नहीं है। तो पंडित लोग को काम मिलना मुश्किल हो गया है।"

"कुछ और काम खोजें" मैंने कहा- "आखिर कब तक लोगों को मूर्ख बनाओगे? कभी इस भगवान के नाम पर, कभी उस भगवान के नाम पर ठगते रहे हो। कभी शनि नाराज हो जाते हैं, कभी बृहस्पति नाराज हो जाते हैं। आखिर समय बदलना ही था। जाति व्यवस्था खत्म हो रही है। लोग जागरूक हो रहे हैं, इसलिए पंडितों का वर्चस्व खत्म हो रहा है।"

“पंडित होकर पंडित लोग की बुराई करते हो?” चाचाजी गुस्साए।

“और ये क्या तुम कहीं भी किसी के बिछावन पर बैठ जाते हो? तुमको पवित्रता से रहना है, मालूम है न! कि सब नियम-धरम भूल गए?”

मुन्ना भैया- “नियम-धरम? कल रात में ये किसी लड़की से बात कर रहा था फोन पर। ...और वो भी किस तरह की बात, मुझे बताते शर्म आती है।”

दीदी सब सुन रही थी किचन से। हाथ पोंछते हुए बाहर आई- “आप लोग गलत समझ रहे हैं। जिससे इसकी शादी तय हुई है, उससे ही बात करता है। ...पापाजी ही दिन तय कर दिए थे 21 जून। लेकिन इसी बीच देखिए ऐसी बात हो गई। ...अब इतने दिन से बात कर हैं ये लोग, तो थोड़ा-बहुत लगाव हो ही जाता है। चाहते तो हम लोग भी थे कि तय तिथि पर शादी हो जाए, बाकी आगे मम्मी जानें। अब उनको ही निर्णय लेना है।”

“नियम तो यही कहता है कि सालभर तक कोई शुभ काम न किया जाए।” चाचाजी ने अपना पक्ष रखा- “घर पर इतनी बड़ी विपदा आन पड़ी है और आप लोग शादी के बारे में सोच रहे हैं? समाज क्या कहेगा कि बाप को मरे अभी चार महीने भी नहीं हुए और बेटा शादी करने चला है।... ऐसे भी जल्दी क्या है? जब तक प्रकाश कुछ काम नहीं करता, तब तक शादी मत करिए। ...इतना खर्च हुआ है इसकी पढ़ाई पर, काम तो मिलना ही चाहिए। बस, लगन होना चाहिए।”

***

एक महीने बाद। माँ से मुखातिब हो भैया ने पूछा- “जब तक कोई काम नहीं मिल जाता, छोटू मेरे ही साथ क्यों नहीं लग जाता? आखिर खाली बैठने से क्या फायदा?”

माँ- “हाँ, ये तो अच्छा ही है। तुम्हारे काम में मदद हो जाएगी और इसका भी मन लग जाएगा। क्यों छोटू?”

“दिक्कत कुछ नहीं है, बस एक बार बिजनेस में लग गए तो लग गए। पढ़ने का टाइम नहीं मिलेगा। मैं चाहता था कुछ दिन और... मतलब जब तक उम्र है कोशिश कर लेते हैं... फिर तो कमाना ही है उम्र भर।” भैया- “आदमी को अपना आकलन खुद करना चाहिए। क्या पढ़ाई करते हो ये सबको पता है।... अगर मन से पढ़े होते तो आज कहीं न कही सेट हो गए होते। दिमाग में तो कुछ और चलते रहता है। ...फोन पर बात करना बंद करो। ...एक साल है तुम्हारे पास। शादी-वादी का ख्याल दिमाग से निकालकर पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करो।” इस तरह के प्रत्यक्ष आरोप सुनकर दंग रह गया मैं। खासकर भैया के मुँह से। सबकुछ जानते हुए भी कभी कुछ नहीं कहा था उन्होंने। शर्म या झिझक की एक लकीर हमेशा रही थी हमारे बीच। ...और आज! चुपचाप उठकर मैं दूसरे रूम में चला गया। पीछे से माँ की बुदबुदाहट सुनाई दी- “ऐसे बात नहीं करना चाहिए था तुमको। बच्चा नहीं है वो।”

“आप लोगों की छूट के कारण वह ऐसा हो गया है। ...पढ़ने में इतना तेज था, लेकिन अब इसको पढ़ाई में मन ही नहीं लगता है। घर में इतना टेंशन है, लेकिन इसको शादी की सूझ रही है।”

माँ- “समय की बात है बाबू! हम तो देखते हैं दिनभर पढ़ते ही रहता है। दौड़-धूप भी करता है इधर-उधर। लेकिन भगवान नहीं सुन रहे हैं उसकी। ...अच्छा, ये दौर भी निकल

ही जाएगा। हमेशा एक जैसे थोड़े ही रहता है।"

भैया- "आज फिर फोन आया था आरा से।"

माँ- "सीमा के पापा का? क्या कह रहे थे?"

भैया- "यही कि शादी तय तिथि पर ही हो जाता तो अच्छा रहता। आपके पिताजी ये शादी फिक्स कर गए थे। वो तो अब नहीं रहे ये सब देखने के लिए, लेकिन उनकी आखिरी इच्छा को पूरा करना आप लोग का कर्तव्य है।"

माँ- "तो तुमने क्या कहा?"

भैया- "मना कर दिया, और क्या! कहा कि अभी घर की स्थिति अच्छी नहीं है। पिताजी के ऑपरेशन और उसके बाद क्रिया-कर्म में बहुत खर्च हो गया है। अभी कई जगह से उधारी लिए हैं हम। ऐसे में अभी शादी के बारे में हम लोग सोच भी नहीं सकते।"

माँ- "ऐसे डायरेक्ट मना नहीं करना चाहिए था। और वैसे भी हमें कौन-सी लड़की की शादी करनी है! पैसा तो मिलेगा ही। उसी को खर्च कर दिया जाएगा।"

भैया- "क्या दे रहे हैं वो लोग? आज के जमाने में दो लाख रुपया का क्या वैल्यू है। सिर्फ इसके काम नहीं करने की वजह से पैसा कम मिल रहा है। पहले चार पर बात हुआ था, फिर तीन पर, फिर पता चला दो ही देंगे और बाकी का सामान देंगे। बार-बार हम लोग को झुकना पड़ता है तो सिर्फ इसके (छोटू) वजह से।"

भाभी- "जाने दीजिए, आपको क्या करना है पैसा से। सामान दें चाहें पैसा दें, उनकी मर्जी। जितना देंगे अपनी बेटी-दामाद को, हम लोग को क्या करना है। और फिर माँ हैं ही, तो आप क्यों टेंशन लेते हैं? कम होगा तो माँ अपनी तरफ से खर्च करेंगी। आखिर माँ-बाप के पैसे पर दोनों बेटे का हक है।"

भैया- "अच्छा, अभी समय है न। देखा जाएगा, अगर सबकुछ ठीक-ठाक रहा, तो कर दिया जाएगा।"

माँ- "बाल-बच्चा खुश रहे, यही मेरी इच्छा है। ये सच है कि लोग प्रश्न उठाएँगे कि इतनी जल्दी क्या थी शादी की, जबकि इतना बड़ा कांड हुआ है घर में। तो सोचने दो जिसे जो सोचना है। मेरे लिए मेरा बच्चा ज्यादा महत्वपूर्ण है। टूट जाएगा वो, अगर ये शादी नहीं हुई तो।... अब ये शादी उसी तिथि पर होगी, जिस पर ये तय कर गए है, 21 जून।"

दिल्ली जो छूटी एक बार, तो हमेशा के लिए छूट गई। न मैंने कभी दिल्ली को पसंद किया, न दिल्ली ने मुझे अपनाया। जो कुछ सामान छूट गया था दिल्ली में, वो भी मँगा लिया ममेरे भाई के हाथों। 'क्यों' का कोई जवाब नहीं था मेरे पास। बस जो दिल न करे, उसे नहीं करना चाहिए।

"मुझे पता था आप नहीं जाएँगे वापस। लेकिन आगे क्या सोचा है?" सीमा के इस प्रश्न के लिए मैं तैयार था- "ऐसा कुछ शपथ नहीं लिया है कि बाहर नहीं जाऊँगा। अगर कोई निश्चित ठिकाना मिला, तो सोचा जाएगा। फिलहाल तो मैंने सोचा है कि यहीं रहूँ। और यहाँ रहने की वजह भी मिल गई है मुझे। सोचता हूँ, भैया के काम में हाथ बँटाऊँ। इतना पड़ा काम उनसे सँभलता नहीं है, स्टाफ रखे हैं। तो उनका भी हेल्प हो जाएगा और मेरा भी मन लग जाएगा।... दूसरा विकल्प है टूयूशन। तुम्हें मैंने बताया नहीं, मैंने टूयूशन पढ़ाना शुरू किया है। सुबह दो घंटे पढ़ाता हूँ, छह से आठ। दस लड़के हैं, पाँच सौ पर-

हेड। तो पाँच हजार तो ऐसे ही बैठे-बैठे कमा लूँगा।"

"कब शुरू किया?"

"हो गया 10-12 दिन। सोचता हूँ, अगर फुल टाइम कोचिंग शुरू कर दूँ, तो आराम से 20-25 हजार महीना कमा लूँगा।"

"अच्छा है। मेरे मन में भी ये विचार आता था टूयूशन का। लेकिन ये सोचकर आपसे नहीं कहा कि आपको कहीं बुरा न लगे। जब तक कोई स्थायी नौकरी नहीं हो जाती, तब तक के लिए ठीक है।... आप जो सोच रहे है, ये हमेशा के लिए ठीक नहीं है। इसका कोई भरोसा नहीं है। आज है, कल नहीं है।"

"तो बिजनेस ही कर लेता हूँ।"

"...बिजनेस? भैया के अंडर में?... देखिए आप काम तो पूरा करेंगे, फिर भी आपका नाम नहीं होगा। एक एहसान वाली फीलिंग आएगी आपमें। लगेगा कि भैया ने आपको सहारा दिया है। आप कितना भी करेंगे मालिक वाली फीलिंग नहीं आएगी, क्योंकि ये है भैया का अपना बिजनेस। खुद से खड़ा किया है उन्होंने। ...भगवान न करे भविष्य में किसी तरह की बात हो जाए, तो वो आपको अलग भी कर सकते हैं। फिर?...अगर बिजनेस ही करना है तो अपना खुद का कीजिए।"

"हर चीज में माइनस पॉइंट खोजोगी तो कैसे चलेगा? मैंने ये सोचा था कि तुम खुश होगी ये सुनकर कि मैं कुछ कमाने लगा हूँ।... लेकिन तुम तो..."

"ओफ्फो, मैं खुश हूँ। पर बहुत खुश नहीं। मुझ पता है, आज नहीं तो कल मुझे बहुत बड़ी खुशी मिलने वाली है। सरकारी नौकरी। ...पता नहीं क्यों, लेकिन मुझे लगता है कि आपकी सरकारी नौकरी ही होगी। और ये मैं आपका हौसला बढ़ाने के लिए नहीं कह रही, ऐसा मेरा मन कहता है। ...और मेरे मन की बात अक्सर सच होती है।"

"डर लगता है। इतना विश्वास मत करो मुझ पर। कहीं निराश न होना पड़े।"

"मैं आप पर कोई दबाव नहीं बना रही। ...आप बस लाइफ एंजॉय करो। जो होगा अच्छा ही होगा।...और शादी की तैयारी कैसी चल रही है? ...मतलब घर का माहौल कैसा है?"

"घर का माहौल तो तुम जानती ही हो।... कभी-कभी लगता है कि मैं कितना बड़ा स्वार्थी हूँ, पिता की मौत के चार महीने बाद शादी कर रहा हूँ।... जो भी आता है घर में यही पूछता है कि क्यों इतनी जल्दी शादी कर रहे हैं!"

"कहने दीजिए। लोगों का काम ही है कहना। वैसे भी यह शादी सालभर के भीतर नहीं हो रही है। होली के बाद हिंदुओं का नया साल शुरू हो जाता है। ये बात आपके घरवालों को भी पता है और हमारे घरवालों को भी। तभी वो लोग तैयार हुए हैं। मेरे पापा खुद पंडिताई करते हैं। उनको सब नियम-कानून मालूम हैं। ...हाँ लोग जेनरली एक साल तक परहेज करते हैं शुभ काम से, लेकिन चाहें तो होली के बाद नया काम कर सकते हैं।"

"अच्छा, तो अइसन बात है! हमको तो मालूमे नहीं था।"

***

...और आखिरकार वो दिन भी आ ही गया, जिसका हमें इंतजार था पिछले 11

महीनों से। विवाह का शुभ दिन। पिछले 15 दिन ऐसे बीते, जैसे पंख लगाकर उड़े हों। क्या सुबह और क्या शाम। बस एक धुन सवार थी काम की। दिनभर काम करते और रात में रिपोर्ट करते। अब हमारी बातें इसी तैयारी के इर्द-गिर्द घूमतीं। लड़कियों को शादी का कितना इंतजार रहता है और कितनी खुशी मिलती है इस माहौल से, मुझे अब पता चला। कोट किस कलर का लिया, जूते किस कलर के लिए, किस डिजायन का कोट सिलवाएँगे, सब बताना पड़ता। "देखिए, आप गोरे हैं, तो आप पर डार्क कलर अच्छा लगेगा... शर्ट सफेद या घी कलर में ले लीजिएगा और कोट मैरून या ब्लैक में... लेकिन पूरा ब्लैक नहीं, क्योंकि शादी में काला रंग नहीं चलता... पूरे बंद गले का मत सिलवाइएगा, क्योंकि आप पतले हैं न, अच्छा नहीं लगेगा... और सुनिए, सीधे तनकर चलिएगा उस दिन। कूबड़ निकालकर बुढ़वा जैसा चलिएगा तो वहीं से भगा देंगे।" इतना ही नहीं, कुछ और बानगियाँ देखिए- "घर पेंट हो गया?...किस कलर से?...और हमारा बेडरूम?...पर्दा भी लग गया नया?...वाह! ड्रेसिंग ले लिए?...तो ले लीजिए न वहीं से। यहाँ से भेजने में टूट जाएगा।...और बाइक का क्या हुआ? ले लिए?... कौन-सा मॉडल लीजिएगा?... कार्ड नहीं छपा अभी तक? यहाँ तो कब का छप गया और बँट भी गया कितना...। कितने लोग आएँगे बरात में?...एक बस कर लीजिएगा और दो-तीन छोटी गाड़ियाँ...एक में तो आप रहेंगे, एक में आपके करीबी रिश्तेदार वगैरह और बाकी लोग बस में... सामान भी चला जाएगा बस में।" कभी-कभी मुझे लगता कि उसे इवेंट-मैनेजमेंट का काम करना चाहिए।

...लेकिन ये खुशी, ये उत्साह बीते दो-तीन दिनों से गायब था। लड़की का एक और रूप। अचानक से वह शांत हो जाती या सुबकने की आवाज आती और फिर फोन कट। ... मायके से बिछुड़ने का दर्द शायद अब गहराने लगा था और आज तो बिल्कुल भी बात नहीं हुई थी। साली साहिबा से ज्ञात हुआ कि वहाँ का मौसम बहुत खराब है। सुबह से ही मूसलधार बारिश और धूलभरी आँधी। शादी का मड़वा उखड़कर उड़ गया है। साथ ही ये भी निर्देश मिला कि आप लोग जल्दी निकलिए। नहीं तो रात में इधर पुल पर जाम लग जाता है। जाम में फँस गए तो फिर...।

कुत्तों के भी दिन फिरते हैं, आज इस कहावत पर यकीन हो गया। किसी युवराज की भाँति मैं सोफे पर बैठा था और मेरे ईर्द-गिर्द सेवकों की भाँति लोग खड़े थे। एक जीजा मुझे कपड़े पहनाने में लगे थे, तो दूसरे जूते। कोई काजल कर रहा था, तो कोई टाई ठीक कर रहा था। इससे पूर्व गीत गा-गाकर घर की महिलाओं ने उबटन लगाया था और फिर स्नान। साथ ही प्रत्येक घटना की वीडियो रिकॉर्डिंग, सेलेब्रिटी वाला एहसास दे रहा था। उच्च ध्वनि पर गड़गड़ाती ढोलक और लयबद्ध बैंड की आवाज के मध्य सीढ़ियों से उतरता वर। अनायास ही एक अनुभूति हुई गर्व की। सैकड़ों जोड़ी नजरों के भार को सँभालता मैं कार में सवार हो गया। लोढ़ा घुमा-घुमा कर महिलाएँ मेरी नजर उतारने लगीं। वैसे, काजल लगाने के बाद मैं जैसा लग रहा था, मेरी नजर उतारने की जरूरत नहीं थी। माँ ने हाथ में 'जातरा' दिया और दिलवालों का काफिला निकल पड़ा दुल्हनिया के शहर।

वरमाला के स्टेज की ओर अग्रसर युवतियों के झुंड में एक आपादमस्तक सुसज्जित कन्या, हाथ में फूल और दीप का थाल लिए। मित्रों में खुसर-पुसर शुरू हुई। किसी ने मुझे चिकोटी काटी, तो किसी ने कान में कहा- 'एक नंबर'। जिस आवाज को मैं लाखों बार

सुन चुका था, उसे सामने से देखना बिल्कुल अजीब था। मेरे हाथ थरथराने लगे उसे मिठाई खिलाते समय। और मैंने गौर किया, उसका भी यही हाल था। ...और जैसा कि अक्सर इस समय होता है, दोनों पक्षों ने अपने-अपने योद्धा को तनकर खड़े होने का निर्देश दिया, ताकि सामने वाला उसे माला न पहना पाए और फिर उसका मजाक बनाया जाए। लेकिन मैं कितना भी तनता, उसके लंबे हाथों की पहुँच से बाहर नहीं जा सकता था। लड़कियों ने हर्ष में ध्वनि की और लड़कों ने निराशा में- "आप भी प्रकाश भैया, थोड़ा-सा टाइट नहीं हो सकते थे!" "बुढ़ऊ जीजाजी कितना टाइट होंगे!" किसी लड़की ने कमेंट किया और फिर एक खिलखिलाहटभरी हँसी।

अपनी पूरी जिंदगी में मैंने सिर्फ एक ही शादी शुरू से अंत तक अटैंड की और वो है अपनी शादी। इसे नींद की मार कहिए या वैवाहिक तामझाम से विकर्षण, मैंने अपने सगे भाई-बहनों की शादियों को भी पूरा नहीं देखा। लेकिन आज पता चला कि हिंदुओं की शादियाँ कितनी मजेदार होती हैं। महिलाओं की रचनाशीलता का अंदाजा तब लगा, जब वो लयबद्ध गीतों-दोहों के माध्यम से गालियाँ निकालने लगीं। ऐसी-ऐसी गंदी गालियाँ, जिनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। ...और फिर लोढ़ा लेकर नजर उतारने का अभिनय। मेरे पिचके गालों के चारों तरफ लोढ़ा घुमाती और मेरे गाल से टकरा देतीं- "चुसल आम जैसन गाल, कमाल-कमाल।" "माई दुध ना पियवले होईं हे ठीक से।" हा-हा-हा...हा-हा-हा!

इस सार्वजनिक बेइज्जती के बाद भी शादी के लिए अग्रसर होना कलेजे की बात थी। ऊपर से नीम चढ़ा लड़की का फूफा। फूफाजी ही पंडिताई कर रहे थे, और थोड़ी ही देर में मुझे ये एहसास हो गया कि फूफाजी की खोपड़ी किसी और धातु से बनी है। बात-बात में आक्रोशित हो जाना उनका स्वभाव था। "ऐसे नहीं महाराज, ऐसे... ठीक से डालिए... इस हाथ में नहीं उस हाथ में लीजिए... अरे बाबा वहाँ क्यों रख रहे हैं, यहाँ रखिए इधर ...जनेऊ नहीं पहनते हैं? कैसा पंडित हैं जी? ...आप इतना अकबका क्यों रहे हैं? शादी है कि मजाक है? ...रुकिए, इधर से नहीं उधर से फेरा लीजिए।" मेजबान दल के सदस्यों ने खूब लुत्फ उठाया इस वार्तालाप का- "फूफाजी के फेरा में बेचारे पाहुन पड़ गए आज।"

जिंदगी का सबसे उत्कृष्ट दान- कन्यादान। अपनी पुत्री का हाथ, अपने हाथों में लेकर शिवशंकर पांडे फफक पड़े। बेतहाशा। एक हाथ से आँसुओं को पोंछते, दूसरे से विधि करवाते। हाथ में पान, सुपारी और स्वर्ण अँगूठी लेकर, अपनी पुत्री का हाथ मेरे हाथों पर रख दिया। शंख छिद्र से होती हुई नीर-धारा मेरे हाथों पर गिरने लगी। और साथ ही घूँघट में छिपे चेहरे से अश्रु की एक गर्म बूँद मेरी हथेली पर आ गिरी। सिहर गया मैं एक पल के लिए। एक पल के लिए मुझे अपनी बेरोजगारी का ख्याल हो आया। कितना सक्षम हूँ मैं इस दान को ग्रहण करने के लिए! औरों के लिए जहाँ इस क्रंदन के स्वाभाविक मतलब थे, मेरे लिए इसके अलग मायने थे। जहाँ लोग यह समझ रहे थे कि पिता, पुत्री से विछोह के कारण दुखी हैं, मैं जानता था कि वो क्यों दुखी हैं! अपनी पुत्री के अनिश्चित भविष्य को लेकर वे चिंतित हुए जा रहे थे। उनकी ये चिंता तब उभरकर सामने आ गई, जब आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा था-"भगवान आपको जीविकोपार्जन का एक साधन दे दें, यही हम भगवान से मनाते हैं।"

***

मुझमें और मेरी जीवनसंगिनी के मध्य एक इंच का भी फासला नहीं बचा था। पहली बार। पहली बार मेरे इतने करीब बैठी थी वो। विदाई के हृदयविदारक माहौल को पीछे छोड़कर, खुद में सिमटी हुई-सी, कार की पिछले सीट पर बैठी वो। और खुद में सिमटा हुआ-सा मैं। ये यकीन करना मुश्किल था कि ये वही लड़की है, जिससे मैंने सैकड़ों नहीं, हजारों बार बातें की थीं। लगभग आधे घंटे पश्चात मैं पहला वाक्य बोल पाया- "चुप हो जाओ। कितना रोओगी! ...और फिर हिम्मत कर उसके चूड़ियों से भरे हाथ को अपने हाथ में ले लिया। मुझे लगा वो थोड़ी असहज हो रही है, फिर भी उसने विरोध नहीं किया। थोड़ी देर बाद उसका मस्तक मेरे कंधे पर आ टिका और वो नींद के आगोश में समा गई। उसका घूँघट सरककर पीछे चला गया और उसका चेहरा पहली बार मैंने गौर से निहारा। थकावट और उपवास के निशान उसके चेहरे पर स्पष्ट नजर आ रहे थे। ऊपरी होंठों पर पसीने की कुछ बूँदें छलक आई थीं। साथ ही उसका मुँह भी थोड़ा खुल गया था नींद के कारण। ये शायद प्यार था या अपनेपन का भाव, उसका ये लापरवाह अंदाज भी मुझे आकर्षक लगा। हाथ पीछे कर मैंने उसे अपने आगोश में लुढ़क जानने दिया। नई बनारसी साड़ी की खुशबू, धुले हुए केशों की खुशबू, चेहरे पर पुते कृत्रिम रंगों की खुशबू, इत्र, पाउडर लिपस्टिक, काजल की मिश्रित खुशबू... स्त्री शरीर की मासूम खुशबू। उन पलों को मैं भरपूर जीना चाहता था कि तभी बगल में बैठी मामी ने सीमा को सचेत किया- 'ठीक से बैठो।' मेरे शरीर पर लगभग लेट चुकी सीमा हड़बड़ाकर उठ बैठी। और हमारे बीच एक बड़ा-सा गैप बना गई। लेकिन जन्म-जन्मांतर के प्यासे युवक को यह कतई मंजूर न हुआ। धीरे-धीरे मैंने उसकी ओर खिसकना शुरू किया।

एन.एच.33 की सुनसान घाटियों से गुजरती गाड़ी। अथाह अँधकार से लड़ती छोटी-सी गाड़ी। बीच-बीच में एक-दो दैत्याकार वाहन उधर से गुजर जाते और फिर वही भयावह नीरवता। "कितना खतरनाक जंगल है! उसने आश्चर्य व्यक्त किया। धीरे-से मैंने उसे अपनी ओर खींच लिया और कान में फुसफुसाया- "एक किस।"

"पागल हो क्या... सब लोग जगे हैं।"

"तुम चाहो तो हो सकता है।"

ये अँधेरे का असर था या मेरे आग्रह का असर, उसने अपने घूँघट को आगे किया और उसकी आड़ में...। मेरी नाक के नीचे गर्म साँसों का एहसास हुआ। दो प्यासे अधर अमृत पान करने लगे।... मेरी हथेलियों में खुजलाहट महसूस हुई और और उसके वक्षों में धक-धक। बेतरतीब धड़कते उसके सीने पर मेरे हाथ जा पहुँचे। उतरती-चढ़ती साँसों को महसूस किया मैंने, अपने हाथों की गोलाइयों में।

***

अगर कोई ये पूछे कि जिंदगी का सबसे खूबसूरत दौर कौन-सा होता है, तो इसका जवाब संभवतः यही होगा- विवाह पश्चात की एक-दो मास की जिंदगी। यही वो काल होता है, जब इंसान जिंदगी को जीता है, बाकी तो सिर्फ ढोता है। यही वो काल होता है जब सास, माँ समान लगती है और बहू बेटी समान। ननद और गोतनी दीदी समान और पति परमेश्वर। नई-नई बहुरिया की हर गलती नादानी लगती है और सास की हर डाँट

प्यारी। बहू अपने साथ घरेलू सामानों का एक बड़ा जखीरा लेकर आई थी। उसके पास दिखाने को बहुत कुछ था और देने को भी। इसलिए दिनभर महिलाओं का जमघट लगा रहता उसके इर्द-गिर्द। औरतें ही नहीं, बच्चे भी अपनी 'भाभी' या 'चाची' के पास ही बैठना चाहते। ...तो इस तरह पति बेचारे को रात का इंतजार करना पड़ता।

आधुनिक विचारों वाली स्त्री को व्यवस्था से बहुत नाराजगी थी। पति और पत्नी एक ही थाली में क्यों नहीं खा सकते? साथ खाने से प्यार बढ़ता है। दीदी को यह नागवार गुजरा। एक दिन टेबल छोड़ के उठ गई। कहा तो कुछ नहीं पर भाव से यह समझ आ गया कि उन्हें साथ खाना पसंद नहीं। माँ ने अकेले में समझाया था- "खाओ साथ में, पर अकेले में।" न ही मुझे साथ खाने में विशेष रुचि थी, न ही इसके विरोध की वजह समझ आई। दुल्हन की दूसरी आपत्ति थी परिधान की बंदिश। कोई क्यों तय करे कि किसे क्या पहनना है! अगर मेरी मर्जी है सलवार सूट की, तो मैं साड़ी क्यों पहनूँ। क्यों बार-बार माँजी जिद करती हैं साड़ी के लिए। जिसे देखना हो सूट में ही देखे। मैं नहीं पहनती साड़ी। विवाह का दूसरा महीना विचारों के टकराव का होता है। जहाँ सास को लगता है कि बहू संस्कारहीन है, बहू को लगता है कि सास रूढ़िवादी हैं। एक दिन खीझकर माँ ने कहा था- "जाओ, जिसको जो करना है करो। सब अपना मर्जी का मालिक है।"

खुशी के दिन ज्यादा तेजी से भागते हैं। मस्तीभरे दिन, मदहोश रातें। हँसते-गाते दो महीने गुजर गए कि एक दिन अचानक जोर का झटका लगा। सुबह-सुबह सीमा को जोरदार कै हुई और घर के अनुभवी सदस्यों को शंका। जिसका अंदेशा था वही हुआ। प्रेग्नेंसी जाँच की रिपोर्ट सकारात्मक आई और मैं नकारात्मक हो गया। मेरे पैरों तले की जमीन खिसक गई। ये कैसे हो गया! गर्भपात। हाँ, यही एक रास्ता है।

"पागल मत बनो। मेरी स्थिति मालूम है, फिर भी ये जिद! अभी मैं ठीक से खुद को नहीं सँभाल सकता, एक बच्चे को कैसे सँभालूँगा?"

"मालूम है। और सच कहो तो मैं भी अभी बच्चा नहीं चाहती।... लेकिन घरवाले चाहते हैं कि... माँजी कह रही थीं कि कितना खुशी का समाचार है ये। लोग इतना पूजा-पाठ और जप-तप करते हैं, तो संतान सुख मिलता है। तुम्हें भगवान बिना माँगे ये सुख दे रहे हैं, तो इसका अनादर मत करो। इस घर में बच्चे की कितनी जरूरत है, देख ही रही हो। आरती (बड़ी बहू) को भगवान एक लड़का दिए थे, फिर छीन लिए। प्रभु की लीला... दो दिन में ही बच्चा चल बसा। तब से लेकर आज तक बेचारी कितनी मन्नत माँग रही है, पूजा कर रही है। कई जगह से इलाज करवा चुकी है। लेकिन भगवान सुन ही नहीं रहे हैं।"

"क्या फालतू दलील है ये! अभी दो महीने ही हुए हैं हमारी शादी को। अभी खुल के जिंदगी जिया भी नहीं कि ये जिम्मेदारी! ...और किसके भरोसे?" माँ सुन रही थीं शायद ये बहस। दूर से ही बोलीं- "काहे इतना चिंता करते हो छोटू। हम हैं न। और बड़ा भाई भी है तुम्हारे ऊपर। इतना टेंशन मत लिया करो। जो भी होगा, अच्छा ही होगा।"

"कुछ अच्छा नहीं होगा। मेरे साथ कभी अच्छा हुआ है क्या? हम जो चाहते हैं, वो होता नहीं और जो नहीं चाहते, वही हो जाता है।"

"कुछ लोग इसी जिंदगी के लिए तरस रहे हैं। उन लोगों की ओर देखो जिन्हें वो भी नसीब नहीं है, जो तुम्हें मिला है।... भगवान को धन्यवाद करो कि तुमको पढ़ने-लिखने

का मौका मिला। नहीं तो कई बच्चे बचपन से ही कमाने लगते हैं।"

"अच्छा है। कम से कम दूसरों पर आश्रित तो नहीं रहते। पढ़े-लिखे लोगों के साथ समस्या है कि वो छोटा काम करना नहीं चाहते। और करेंगे तो भी लोग मजाक उड़ाएँगे कि देखो पढ़-लिख के क्या कर रहा है।"

"देखो छोटू! ज्यादा भविष्य के बारे में नहीं सोचना चाहिए। कृष्ण जी जो कह गए वो आज भी सही है। बस कर्म करो, फल की चिंता मत करो। भविष्य के चक्कर में ये जो खूबसूरत वर्तमान है, उसे क्यों बर्बाद करते हो?"

सीमा- "देखा, माँजी कितना अच्छा प्रवचन करती हैं। कुछ सीखिए इनसे।"

मैं- "धार्मिक चैनल देख-देख के माँ होशियार हो गई हैं।"

माँ- "होशियार हम क्या होंगे छोटू! हम तो बस एक सलाह दिए थे। बाकी तुम लोग खुद ही समझदार हो। हमको लगा कि अभी इस घर में एक बच्चे की जरूरत है, तो कह दिए। रही बात नौकरी की, तो किस्मत कोई नहीं जानता। हो सकता है आने वाला बच्चा अपना किस्मत ले के आए। हम तो कितना आदमी देखे हैं कि इधर बच्चा हुआ, उधर नौकरी लगी। पूनम के पापा को ही देख लो। पूनम के जन्म के एक महीने बाद उनकी नौकरी लग गई। पटना वाले फूफाजी भी बहुत परेशान रहते थे। दो-दो बेटी हो गई और कमाई कुछ नहीं। चिंता में फुआ काँटा हो गई थी। लेकिन किस्मत देखो। नौकरी लगनी थी तो लग गई। उनके पिताजी की आकस्मिक मृत्य हो गई और फूफाजी को अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिल गई।"

तो इस तरह अनेकानेक विचार-मंथन के बाद, कुछ पारिवारिक दबाव के कारण, कुछ खुद की इच्छा के कारण अंततः सीमा गर्भ रखने को तैयार हो गई। आस-पड़ोस की बूढ़ी औरतों ने सीमा के शारीरिक परिवर्तनों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाला कि उसे लड़का ही होगा। हाँ, जिस तरह से उसे बार-बार मीठा खाने का मन हो रहा है या जिस तरह से उसके शरीर की रौनक कम हो रही है, उससे तो यही लगता है कि लड़का ही होगा। शायद इस तरह की बातों ने भी सीमा के मन में एक गर्व पैदा किया होगा। शायद उसे लगने लगा था कि उसके शरीर से ही इस परिवार की वंश-वृद्धि होगी। और सच में, उसकी इज्जत या कहिए देखभाल बढ़ गई थी परिवार में। माताजी उसके आगे-पीछे लगी रहतीं। ननदों के भी फोन आ जाते अक्सर। कि ठीक से अपना ख्याल रखना। कि खूब अच्छा-अच्छा खाना खाए। कि भारी कुछ मत उठाना। कि पोंछा मत लगाना, मसाला मत पीसना। कि दूध और फल रोज लेना। कि अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ना। आदि-आदि। अब घर में दो बहुएँ हों और एक का मान-सम्मान हो, वो भी इस वजह से जो दूसरे के पास नहीं है, तो ईर्ष्या का बढ़ना स्वाभाविक होता है।

भाभी आज कल खोई-खोई और उदास रहने लगी थीं। एक तो उनकी देवरानी का भरपूर ख्याल रखा जा रहा था, तो दूसरी ओर उन्हें काम भी ज्यादा करने पड़ते। गर्भावस्था की वजह से सीमा को अक्सर चक्कर आते या उल्टी हो जाती। वह चुपचाप जाकर लेट जाती और भाभी को खाना बनाना पड़ता। दो-चार दिन तो सब ठीक चला, लेकिन एक दिन भाभी भी लेट गईं शाम होते। पेट में दर्द हो रहा है, ऐसा उन्होंने बताया। दूसरे दिन फिर लेट गईं। तीसरे दिन फिर लेट गईं। माँ चुपचाप उठकर खाना बनातीं, पर बोलतीं कुछ नहीं। लेकिन चौथे दिन उनके सब्र का बाँध टूट गया- "रोज-रोज तुम लोग

को क्या हो जाता है? शाम होते ही पेटदर्द! इलाज क्यों नहीं करवाती?"

भाभी निकली तुनकते हुए- "अच्छा, तो मेरा लेटना दिखाई देता है और दूसरों का लेटना दिखाई नहीं देता? आँख है तो बराबर भाव से देखिए सबको। ठीक है?"

माँ- "वो क्यों सो जाती है, ये तुमको भी मालूम है। ऐसी स्थिति में अक्सर कमजोरी हो जाती है।"

भाभी- "हाँ, हमको तो जैसे पता ही नहीं है। हम तो जैसे इस माहौल से गुजरे ही नहीं हैं। हमको तो कभी ऐसा नहीं हुआ। आपको भी याद होगा कि पूरे नौ महीने हम काम करते रहे थे। यहाँ तो इतना ख्याल रखा जा रहा है कि ये मत करो, वो मत करो। हमारे समय में कहाँ थे आप लोग! चापाकल से पानी भर-भर के लाते थे, याद है? उस समय क्यों मना नहीं किए कि ये मत करो, वो मत करो। मर-मर के झाड़ू-पोंछा करते थे, घर-बाहर सब करते थे, तो क्यों नहीं कभी मदद कर दिए?... यहाँ तो दुलारी बहू का हाथ-पैर दबाया जा रहा है। माथा दबाया जा रहा है। वाह रे वाह!"

माँ- "सबका शरीर एक जैसा नहीं होता। हमको अपने कभी पता नहीं चला। पाँच-पाँच बच्चा हुआ।... लेकिन उसका शरीर कमजोर है।"

भाभी- "तो हम क्या हनुमान जी हैं कि मेरा शरीर वज्र का है? हमको क्या तकलीफ-बीमारी नहीं हो सकती?"

सीमा सुन रही थी सब शायद। उसने मुँह से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन किचन के खड़खड़ाते बर्तनों ने ये संकेत दे दिया कि बात सुनना उसे पसंद नहीं।

***

"मायके? पर क्यों?"

"ऐसे ही।"

"अभी कुछ ही दिन पहले तुम गई थीं। इतनी जल्दी-जल्दी क्यों?" मैंने पूछा।

"इस बार लंबे समय के लिए जाना है।"

"मतलब?"

"मतलब ये कि जब तक बच्चा नहीं हो जाता।... छह-सात महीनों के लिए।"

"क्या हुआ, कुछ बात है क्या?"

"बात क्या होगी! बात कुछ भी नहीं।... बस मम्मी-पापा की याद आ रही थी।" और फिर करवट बदलकर उसने अपना मुँह तकिए में छुपा लिया। मुँह तो उसने छुपा लिया, पर उसके हिलते शरीर से मैंने अनुमान लगाया कि वो रो रही है। कंधा पकड़कर उसे अपनी ओर किया, तो पूरा चेहरा आँसुओं से भीगा। आँखें लाल और फूली हुईं।

"क्या बात है, सच-सच बताओ?" उसका चेहरा अपनी ओर करते हुए मैंने पूछा।

"...वो...वो...वो मुझे यहाँ नहीं रहना है जान! ये घर मेरे लायक नहीं है।... यहाँ हर चीज में कंप्टीशन होता है। अगर मेरी तबियत खराब होती है, तो दूसरे की भी खराब हो जाती है। कोई चीज अगर हम बाजार से मँगवा लें, तो वही चीज उनको भी चाहिए।... हमको क्या-क्या मिला शादी में उसकी भी बराबरी। कि मेरे समय कुछ भी नहीं चढ़ाया गया और सीमा के समय इतना कुछ।... और माँजी भी सिर्फ सुन के रह जाती हैं। उनके सामने तो उनका जुबान नहीं खुलता। आकर हमको समझाती हैं कि छोटी-छोटी बातों में

लड़ाई नहीं करना चाहिए।... दम घुटता है मेरा ऐसे माहौल में।"

सोच में पड़ गया मैं। मैं अब उस अग्नि परीक्षा से गुजरने वाला था, जिससे अधिकांश विवाहित पुरुषों को गुजरना पड़ता है। परिवार और पत्नी में किसी एक को चुनने की परीक्षा। अगर पत्नी को चुनता हूँ, तो जोरू का गुलाम बन जाता हूँ और अगर परिवार को चुनता हूँ, तो पत्नी के आँसू सामने आ जाते हैं। और सच कहूँ तो मैं इस चुनाव के लायक भी नहीं था। मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं था कि अलग होने की बात सोचूँ।... नहीं, पत्नी की हर बात को सत्य नहीं मानना चाहिए। औरत के आँसू बहुत खतरनाक होते हैं। अनेक युद्ध करवा चुके हैं। इसलिए सँभलकर।

"ठीक है, अगर तुम जाना चाहती हो तो जाओ... लेकिन ये मत शो करना कि गुस्सा के जा रही हो। कह देना कि बस कुछ दिनों के लिए माँ-पापा से मिलने जा रही हूँ।"

"मुझे परवाह नहीं किसी की। मैं तो कह के जाऊँगी कि एक साल के लिए जा रही हूँ। आप लोग रहो चैन से।"

"तुम शुरू से लड़ाकिन हो क्या?"

"हाँ मैं लड़ाकिन हूँ। मेरा बाप लड़ाकू है। मेरी माँ लड़ाकिन है। मेरा पूरा परिवार लड़ाकू है। बस आपके परिवार वाले गाय हैं। गलत लड़की को ले आए आप लोग।"

***

सीमा तो चली गई मायके अनिश्चितकाल के लिए, मुझे छोड़ गई अकेला, अनगिनत यादों के सहारे। दो-तीन महीनों की बेहिसाब यादें। सुबह से लेकर शाम तक और शाम से लेकर सुबह तक हर पल में उसका ही अक्स। खाना खाओ तो वो सामने आकर पूछती- "रोटी चाहिए?" सोने जाओ तो बगल में वह लेटी रहती और कहती- "पीठ दबा दो ना, बहुत दर्द कर रहा है।" नहाने जाओ तो वह दरवाजे पर खड़ी मुस्कुराती रहती- "मैं भी आ जाऊँ क्या?" पढ़ने बैठो तो वह पीठ पर लदक जाती- "कितना पढ़ोगे पतिदेव? "टीवी देखो तो रिमोट छीन लेती और कहती- "जब देखो न्यूज या तो मैच।" बाजार जाओ तो उसके ही शब्द कानों में गूँजते- "जानू, लौटते समय जलेबी ले लेना, प्लीज।" कभी उदास हो जाता तो कभी बैठे-बैठे मुस्कराने लगता।

सोचा न था कि मेरी अर्थहीन जिंदगी इस तरह से करवट लेगी। दोपहर के खाने के बाद की अलसाई नींद तब अचानक कड़वी हो गई, जब फोन की घंटी बजी। यूँ तो मित्रों का फोन आना कोई अचरज वाली बात नहीं थी, लेकिन जयकिशन का फोन आना वाकई मुझे हैरत में डाल गया। अगर मैं सही हूँ, तो कम से कम एक साल बाद उसका फोन आया था। पता चला कि वह दिल्ली में रहता है और कैट की तैयारी कर रहा है। एक मित्र के यहाँ आया था, जहाँ से उसे मेरा नंबर मिला। उसे पता चल गया था कि मैं कुछ कर नहीं रहा हूँ। फिर भी उसने ये जालिम प्रश्न पूछ ही दिया- "क्या कर रहे हो, आजकल?" चाहता तो मैं था कि झूठ बोल दूँ, पर पता नहीं क्यों जुबान से सच ही निकला- "कुछ नहीं, बस नौकरी की तैयारी कर रहा हूँ।"

"कैसी नौकरी?"

"जो भी लग जाए। बैंक, रेलवे, इंजीनियरिंग, सचिवालय, कुछ भी।"

"तुम किसको धोखा दे रहे हो, प्रकाश? दूसरों को या खुद को? तुम्हें लगता है कि इस

तरह की तैयारी से कुछ हो पाएगा?... अबे, तुम शादीशुदा आदमी है और सुने हैं कि बच्चा भी होने वाला है। तुम एक नहीं तीन-तीन जिंदगी बर्बाद कर रहे हो।"

"इतना जलील मत करो यार। कुछ तो रहम करो।"

पीछे से हँसने की आवाज आ रही थी। मित्रगण मेरी इस खिंचाई का आनंद ले रहे थे। कोई और होता तो मैं शायद फोन काट देता, लेकिन मुझे पता था कि जयकिशन भले ही कितना भी कड़वा बोल ले, दिल का बुरा नहीं है।

"जलील नहीं कर रहे हैं हम। बस तुम्हारा कोढ़ियापनी दूर करना चाहते हैं। स्साले, तैयारी के नाम पर चुपचाप घर में बैठकर आराम कर रहे हो। इस तरह से कहीं तैयारी होता है? मोंटी का सुना कि नहीं। सिंडिकेट बैंक में हो गया है उसका। अब सोचो, कहाँ मोंटी और कहाँ तुम! तुम स्साला इतना तेज था पढ़ने में। जो भी सुनता है, आश्चर्य करता है कि प्रकाश कुछ नहीं कर रहा है। पता है, तुम्हारे लेजीपनी के चलते दूसरे लोगों का भी मोरल डाउन होगा। कि जब प्रकाश का कहीं नहीं हुआ तो हम किस खेत की मूली हैं!"

"तो क्या करें हम? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। तुम्हीं कुछ राह सुझाओ।"

"देखो, तुम पढ़ने में तेज है नो डाउट, लेकिन बहुत बड़ा आलसी है। अबे बाहर निकलो, कोचिंग जॉइन करो, टेस्ट सीरीज जॉइन करो। ग्रुप में रहोगे तो नॉलेज बढ़ेगा, इंट्रेस्ट बढ़ेगा। अकेले पढ़ने से आदमी बोर हो जाता है।"

"सही कह रहे हो तुम।"

"अबे इतना तो तुमको भी पता है कि क्या सही है और क्या गलत। पहले तो तुम ये डिसाइड करो कि तुम्हें करना क्या है? बैंक वगैरह की तैयारी या इंजीनियरिंग की तैयारी। दोनों साथ-साथ नहीं हो सकता। दो नावों की सवारी करोगे तो दिक्कत होगी। तुम्हारा इंट्रेस्ट किस चीज में है, ये तय करो। फिर उसी में जी-जान से जुट जाओ।"

"हूँ।... लेकिन अब घर से पैसा लेना अच्छा नहीं लगता।"

"अबे छह महीना। हम गारंटी लेते हैं कि तुम अगर छह महीना रगड़ के पढ़ दिया न, तो बैंक में आराम से हो जायेगा।... मैथ तो बढ़िया है ही तुम्हारा, और जीएस भी अच्छा है। खाली ट्रिक सीखना है तुमको कि कैसे कम समय में ज्यादा क्वेश्चन बनाया जाए। देखो, बैंकिंग में है कुछ नहीं, बस टाइमिंग का खेला है।"

जिस तरह से बैंकिंग में अपार रिक्तियाँ आ रही थीं और भविष्य में आने की संभावना थी, और जिस तरह से मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया गया था, मैंने बैंकिंग में ही कॅरिअर बनाने का निश्चय कर लिया। इंजीनियरिंग की पुस्तकों को अलमारी में रख ताला लगा दिया और निकल पड़ा राँची की ओर। और इस बार मेरे इरादे बहुत स्पष्ट थे और लक्ष्य एकदम साफ। इस बार मेरी प्रतिबद्धता और लगन देखकर लोगों ने हैरानी जताई। मेरी ये धुन तब और पक्की हो गई, जब मेरे दो मित्रों की नौकरी लग गई। एक की बैंक ऑफ इंडिया पीओ, तो दूसरे की सेल में मैनेजमेंट ट्रेनी के रूप में। एक ही दिन में दो-दो खबरें सुनने के बाद बाकी के बेरोजगार मित्र सदमे में थे।

"हाँ भैया फाइनल! फाइलन सेलेक्शन हो गया है दोनों का। सुबह में अजय फोन किया था कि पीओ में हो गया है उसका। एक घंटे बाद दूसरा झटका अमर दिया। और इस बार तो हम एकदम कोमा में चले गए, जब पता चला कि सेल में हो गया है उसका।"

"तो तुम जल क्यों रहे हो? तुम भी मेहनत करो। कौन मना किया है?" किताब में

नजरें गड़ाए हुए मैंने कहा।

“अच्छा, सच बताइए, आपको बुरा नहीं लग रहा है? एक-एक कर सबका नौकरी हो रहा है और हम लोग यहाँ घास उखाड़ रहे हैं।”

“देखिए, बुरा इस बात का नहीं लग रहा है कि उन लोगों की नौकरी लग गई, बल्कि इस बात का कि हम लोग की क्यों नहीं लगी।”

“वही। वही हम कह रहे हैं कि जब तक अपना कंडीशन ठीक न हो, तब तक दूसरों की सफलता अच्छी नहीं लगती। अभी तक हम लोग के पास ये बहाना था कि किसी का नौकरी नहीं लग रहा है। लेकिन अब हम लोग पर प्रेशर बढ़ जाएगा। घर वाले अब हमारी तुलना करेंगे इन लोगों के साथ।”

ये खबर सिर्फ मेरे लिए ही महत्व नहीं रखती थी, मेरे परिवार के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण थी। जिन लोगों का मुझसे भरोसा उठ गया था, उनके लिए संजीवनी का काम कर गई। और सच में, मैंने सीमा को ये खबर ऐसे सुनाई थी, जैसे मेरी ही नौकरी लगी हो।

“वाह, क्या बात है! एक साथ दो-दो फ्रेंड की नौकरी लग गई?” आश्चर्य व्यक्त किया उसने।

“हाँ, वो भी छोटा-मोटा नौकरी नहीं। पीओ समझती है?... मतलब मैनेजर। बैंक ऑफ इंडिया में असिस्टेंट मैनेजर बनेगा। और दूसरा सेल में इंजीनियर। स्टार्टिंग 40 हजार मिलेगा लगभग।”

“लाइफ बन गई दोनों की... नहीं? अभी तो दोनों की शादी भी नहीं हुई शायद?”

“वही न! भगवान उसको नौकरी नहीं दे रहे हैं, जिसको अभी सख्त जरूरत है। उन लोगों का क्या है, आगे नाथ न पीछे पगहा। जो कमाएगा खुद पर उड़ाएगा।”

“हो जाएगी। आपकी भी नौकरी हो जाएगी। बस समय की बात है।” मुझे पता था कि ये आधे विश्वास से कहा गया वचन था। धीरे-धीरे उसका विश्वास मुझसे उठने लगा था। मुझे याद आया कि एक बार मैं रात को पढ़ाई कर रहा था कुर्सी पर बैठकर और वो मेरा इंतजार कर रही थी बिस्तर पर लेटकर। उसने पुकारा था- “आओ न जानू।” मैं चुपचाप पढ़ता रहा। थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा था- “क्यों तड़पा रहे हो, आओ न।” बार-बार के आग्रह से मैं झुँझला गया था- “ओफ्फो, पढ़ाई कर रहा हूँ। देख नहीं रही हो क्या?” उसके बाद जो उसकी प्रतिक्रिया आई, उसकी उम्मीद नहीं थी मुझे। पता नहीं ये उसके दिल की आवाज थी या जानबूझकर गुस्से में कहा था- “पढ़कर कौन-सा तीर मार लोगे? पढ़ना ही था तो शादी क्यों किए?” और फिर वह करवट बदल कर सो गई। मैं किताबों में नजरें गड़ाए अपने विचारों में खो गया था।

और फिर शुरू हुआ पार्टियों का सिलसिला। सैलरी मिलने तक का इंतजार नहीं कर सकते थे हम लोग। सच में, इसकी जरूरत भी नहीं थी। दोनों अच्छे घर से थे, इसलिए जॉइन करने से पहले ही आ गए हमें जॉइन करने। खुद ही अजय ने दिल खोल दिया- “अरे, एक टाइम क्यों, चार टाइम खाओ। दो दिन मेरे तरफ से। सुबह, दोपहर, शाम जो मन करे खाओ। जिस रेस्तराँ में मन करे उसमें जाओ।”

“वाह अजय वाह! दिल खुश कर दिया यार तुमने तो। अब अमर तुम क्या बोलते हो?”

अमर क्या बोले! न चाहकर भी उसे स्वीकार करना पड़ा। तो तय हुआ कि दो दिन

अमर खिलाएगा और दो दिन अजय। साथ ही एक-एक फिल्म दिखाने का भी खर्च डाला गया दोनों पर। हम लोगों का काम था बस शर्ट-पैंट पहनकर, बाल झाड़कर तैयार हो जाना। पर्स और एटीएम कार्ड लेना उन लोगों का काम था। रिक्शा भाड़ा से लेकर ऑटो भाड़ा तक, टिकट से लेकर पॉपकॉर्न तक सबकुछ अजय और अमर देंगे। फिर रात किसी बढ़िया रेस्तराँ में। वो भी रोज बदल-बदल कर। एक ही में खाने से मन भर जाता है। चार दिन के इस व्यस्त कार्यक्रम के बाद वाकई रेस्तराँ से मन भर गया सबका। बात बदल-बदल कर खाने की नहीं थी, बात रेस्तराँ में खाने की थी। तेल-मसाले की तीव्र गंध नाक के आस-पास बनी रहती। सबने तौबा की होटल के खाने से और मैंने भी प्रतिज्ञा ली- कम से कम छह महीना हम उधर से गुजरेंगे भी नहीं, जिधर कोई रेस्तराँ पड़ता हो।

***

दो महीने से ऊपर गुजर चुके थे हमारी आखिरी मुलाकात को। नव-विवाहित दंपती के लिए इतनी जल्दी, इतनी लंबी जुदाई सहना वाकई असहनीय था। बातचीत करते-करते अचानक सीमा भावुक हो जाती। कैसी किस्मत है हमारी! इतने इंतजार के बाद हम लोग एक हुए। लेकिन कितने दिन साथ रहे। मुश्किल से एक-डेढ़ महीना। और फिर से वही फोन वाली जिंदगी शुरू हो गई।" "चलो, मैं मानती हूँ कि मैं अपनी मर्जी से मायके आई। लेकिन मैं वहाँ रहकर भी क्या करती! आप तो वहाँ हो नहीं। और आपके पास भी नहीं आ सकती। आप अभी खुद इस स्थिति में नहीं हैं कि...। "इस तरह की बातें मुझे कमजोर करती हैं सीमा! काश कि तुम समझ पाती कि किसी को बार-बार उसकी कमजोरी नहीं बतानी चाहिए। शायद तुम्हें मुझ पर यकीन नहीं है, लेकिन मुझे है खुद पर। मैं जानता हूँ कि मैं अब सही रास्ते पर हूँ।" जिस तरह से मेरे टेस्ट सीरीज के परिणाम आ रहे थे, मेरा खुद पर यकीन बढ़ता जा रहा था। मेरे अंदर की भूख फिर से जागृत हो चुकी थी। पढ़ाई की भूख। अब मुझे पढ़ने में मजा आने लगा था और जब आपको अपने काम में मजा आने लगे, तो समझो कि सफलता निश्चित है।

"मैं कुछ नहीं जानती। आपको दिवाली में आना पड़ेगा।" दशहरे की छुट्टियाँ भी मैंने इस बार राँची में ही गुजार दी थीं। शायद ऐसा पहली बार था कि मैं अपने घर से दूर था दशहरे में। लोगों ने आश्चर्य व्यक्त किया था कि क्यों मैं घर नहीं आ रहा। मुझे भी नहीं पता। शायद ये एक प्रकार की प्रतिज्ञा थी कि अब घर तभी लौटूँगा, जब हाथ में नौकरी हो। "ठीक है, घर नहीं जाना है, मत जाइए। आरा तो आ सकते हैं।"

"मन नहीं करता। किसी से मिलने का मन नहीं करता है।"

"मुझसे भी नहीं?... ठीक है आपको लोगों से मिलने में शर्म लगती है। तो क्या इसके चलते आप मुझे छोड़ दोगे?... आप कैसे इतना निष्ठुर हो गए?... दो महीना! दो महीने से ऊपर हो गए हैं हमें मिले हुए। आपका कैसा कलेजा है कि एक बार भी मन नहीं करता अपनी बीवी को देखने का। वो भी इस अवस्था में। क्या खा रहे हैं, कैसे रह रहे हैं, कोई मतलब नहीं। न ही आपको न ही आपके घरवालों को। एक लावारिस की तरह छोड़ दिया गया है यहाँ पर।"

"ऐसी भावुक बातें मत करो। तुम्हें मेरी ताकत बनना चाहिए, मेरी कमजोरी नहीं। इस तरह की नकारात्मक बातें करोगी, तो कैसे चलेगा? तुम्हें क्या लगता है, मुझे तुम्हारी

परवाह नहीं। तो किसके लिए आँखें फोड़कर पढाई कर रहा हूँ?... चाहता तो था कि इज्जत से घर लौटूँ, खुशखबरी के साथ। लेकिन अब लगता है कि एक बार तुमसे मिलना ही पड़ेगा।"

"हाँ जान, प्लीज! आप नहीं जानते कभी-कभी कैसा मन हो जाता है मेरा। आप तो अपने काम में बिजी हो जाते होंगे, मेरा यहाँ दिन काटना मुश्किल हो जाता है।... आँख बंद करके आपको याद करने की कोशिश करती हूँ। लेकिन अब आपका चेहरा भी नहीं बनता आँखों के सामने। बस एल्बम है, उसको देखकर मन बहला लेती हूँ।

"...तो ठीक है, छठ में आ जाते हैं।"

"नहीं दिवाली में। और छठ तक रहिएगा। खूब सारा प्यार करेंगे हम लोग।"

"बस छठ तक? हम तो सोचे थे कि कम-से-कम 15 दिन तो रहेंगे ससुराल में। खूब मेहमान-नवाजी कराएँगे सास-ससुर से।"

"जी नहीं। एक सप्ताह या बहुत हुआ तो दस दिन। ज्यादा दिन रहने से इज्जत कम हो जाती है।"

"होने दो। जब तक तुम्हारे मम्मी-पापा मार के नहीं भगाएँगे, हम नहीं हटने वाले वहाँ से।"

"जान!"

"यस माई प्राण!"

***

छत के एकांत कोने में चटाई पर लेटा मैं किसी का इंतजार कर रहा था। वैसे तो वातावरण में ठंडक आ चुकी थी, फिर भी मिलन की आस में शरीर गर्म हुआ जा रहा था। बिजली कट गई थी और सीमा ने इशारे में कहा था- "आप ऊपर चलिए, मैं पीछे आती हूँ।" ...चार घंटे हो गए थे मुझे ससुराल में कदम रखे। लेकिन अभी तक एक बार भी स्पर्श नहीं। बस आँखों से रसपान करता रहा था। मेहमानों से भरे घर में मेरी पत्नी किसी अजनबी की भाँति पेश आ रही थी। बस चाय-नाश्ता, खाना यही सब। अगर यही सब होना था, तो बुलाया क्यों? चाय-बिस्कुट खिलाने के लिए और साले-ससुर से बात करने के लिए? तुमने तो कहा था कि मिलते ही लिपट जाऊँगी आपसे। और किया क्या? एक बार भी टच करने का मौका नहीं दिया। बस सज-सँवरकर ललचाती रही। तिरछी नजरों से बीच-बीच में घायल करती रही। मिलने की हड़बड़ी में एक दिन पहले ही आ गया था मैं। लेकिन मुझे क्या पता था कि मेरे दोनों साले भी आ चुके थे, मुझसे पहले। पायल की छुन-छुन से मैं सतर्क हुआ। सचमुच सीमा आकर मेरी चटाई पर बैठ चुकी थी। लाइट कटी होने की वजह से छत पर अँधकार था। हाथ बढ़ाकर उसे मैंने अपने आगोश में खींच लिया। "ऊँहूँ। आराम से। ये छत पर्सनल नहीं है। इसलिए थोड़ी सावधानी से। यहाँ और भी किराएदार लोग आते हैं।"

"तो आने दो।" और फिर पीछ से मैंने उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया। गर्दन और पीठ पर चुंबनों की बरसात करते लड़खड़ाती आवाज में कहा- "कौन-सा हम दूसरे की बीवी से फ्लर्ट कर रहे हैं। अपनी बीवी से प्यार करना मना है क्या?"

छिटककर वह मेरी पकड़ से दूर चली गई- "पागल मत बनिए। शर्म-लिहाज कोई

चीज है कि नहीं? मैं यहाँ सिर्फ आपसे दो-चार बातें करने आई हूँ। ज्यादा दिमाग मत लगाइए।"

थोड़ा-सा सरककर वह मेरे पास आई और थोड़ा-सा मैं उसके पास खिसक गया। हाथ में उसकी कलाई लेकर मैंने पूछा- "तो आज रात का क्या प्लान है?"

"मतलब?"

"मतलब ये कि इतने दिनों बाद हम लोग मिले हैं। तो मिलन भी यादगार होना चाहिए।"

"जान, आपको शायद बुरा लगे, लेकिन आज रात हम लोग मिल नहीं पाएँगे।"

"क्यों?" मैं एकदम से उछल पड़ा। "आप देख ही रहे हैं, फिर भी पूछते हैं क्यों। घर में इतने लोग आए हुए हैं। दोनों भाई हैं, दादी हैं, मौसी भी आज आई हैं।... ऐसे में हम लोगों को एक अलग रूम मिलना मुश्किल है।"

"मैं कुछ नहीं जानता। तो फिर मुझे बुलाया क्यों?" मैं गुस्से के मारे उससे दूर हट गया और वहीं से बडबड़ाने लगा- "मुझे पता था कि पर्व-त्योहार में तुम्हारे यहाँ भीड़-भाड़ होगी। फिर भी पता नहीं क्यों मुझे बुला लिया। अपने भाई-बाप से भेंट करवाने के लिए! जैसे हम उनसे मिले बगैर मरे जा रहे थे!"

"गुस्सा क्यों होते हो?" पीठ पर धीरे से हाथ रखकर उसने मुझे समझाना शुरू किया- "बस, कल भर की ही तो बात है। कल दिवाली है और परसों मेरा भाई लोग चला जाएगा। मौसी भी परसों चली जाएँगी।... इसी बहाने सबसे भेंट तो हो गई आपकी। आखिर इन लोगों के भी कुछ अरमान हैं कि नहीं! इकलौता जीजा हैं आप। ये भी सोचते होंगे कि जीजाजी कैसे हैं, कभी बात नहीं करते हैं।... ठीक है, आपको बात करने का ज्यादा शौक नहीं है, लेकिन कभी-कभी दूसरों की खातिर... बस इतना ही पूछ लेते कि क्या कर रहे हो, आगे क्या प्लानिंग है... या कभी पापा से ही पूछ लेते कि तबियत कैसी रहती है।... लेकिन नहीं, आपको तो किसी से मतलब ही नहीं है। सिर्फ बीवी से रोमांटिक बातें करनी आती हैं।"

मुझे ये लेक्चर बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। लगा जैसे किसी ने मिठाई की थाली दिखाकर वापस छीन ली हो। और फिर ये ज्ञान दे रहा हो कि मिठाई स्वास्थ के लिए अच्छी नहीं होती। मन तो हुआ कि अगली ट्रेन से ही वापस लौट जाऊँ।... लेकिन...।

***

घर के अंदर वाले कमरे में चुपचाप जाकर लेट गया मैं। दिल और दिमाग दोनों ने संतोष कर लिया था कि आज कुछ मिलने वाला नहीं है। इसलिए थोड़ी ही देर में मैं निद्रा के आगोश में समा गया। आधी नींद में मैंने महसूस किया कि कोई दरवाजा खोल रहा है। फिर दरवाजा बंद होने की आवाज आई। मुझे लगा शायद कोई पुरुष सदस्य सोने के लिए आ रहा है।... लेकिन नहीं, पायल और चूड़ी की आवाज? माँजी या मौसी तो नहीं?... या फिर सीमा? या फिर मुझे कोई भ्रम तो नहीं हुआ! मैं डर से सिर नहीं घुमा रहा था कि फिर से मेरी उम्मीद ना टूट जाए।... लेकिन ये भ्रम नहीं था। मेरी पीठ पर हल्की-सी सुरसुराहट महसूस हुई और फिर चूड़ियों से भरा हाथ मेरे सीने को घेर गया। आश्चर्य से मैंने अपना सिर घुमाया, तो मेरा मुँह खुला का खुला रह गया। मुस्कराते हुए सीमा ने पूछा-

“सो गए थे क्या?” मेरे लिए ये यकीन करना अब भी मुश्किल था कि सीमा मेरे ऊपर लेटी हुई है। “लेकिन कैसे? तुमने तो कहा था कि...”

“हाँ कहा था। खाना खाकर जब मैं बाहर वाले रूम में सोने गई तो... मम्मी बोलीं कि अंदर जाकर सो जाओ। मैंने कहा कि नहीं, यहीं ठीक है। बाकी लोग को दिक्कत होगी। तो डाँटने लगीं। बोलीं कि तुम्हीं को टेंशन है सब चीज का! नवीन चाचा के यहाँ चला गया है सोने। और मोनू का भी एक दोस्त के यहाँ पार्टी है। वहीं रुक जाएगा।”

खुशी के मारे मेरी आवाज अटक गई अंदर। मैं सासू माँ को धन्यवाद कहना चाहता था, लेकिन मेरी जुबान सिल गई थी। वही हाल उसका भी था। एक-दूसरे को बाँहों में जकड़े हम एक-दूसरे की धड़कनों को महसूस कर रहे थे। कोई शोर नहीं, बस सीने की धक-धक। मैं उठकर उसे औंधा लिटाना चाहता था कि उसने रोक दिया- “नहीं। बस ऐसे ही। ऐसे ही लिपटे रहो।... कोई हरकत नहीं, बस महसूस करो एक-दूसरे को।... इतने दिनों की तड़प... ओह! कितना सुकून दे रहा है ये पल... लगता है ऐसे ही पूरी उम्र गुजार दूँ।”

लेकिन पुरुष की इच्छाएँ कुछ अलग होती हैं। शरीर की बाह्य सुंदरता मेरे मन पर हावी होने लगी। बाहर से छनकर आती मद्धिम रोशनी में मैंने उसकी खूबसूरती का अवलोकन किया। घने केशों के झुंड में चमकता गोल चेहरा, मस्तक पर खिंची लाल सिंदूर की रेखा और नीचे दोनों कटीले नयनों पर खिंची काजल की रेखा। नीचे नाक में गुँथी सोने की नथ और उसके नीचे गुलाब की दो पंखुड़ियाँ। एक चेहरे में ही भगवान ने इतनी कलाकारी दिखा दी है कि अन्यत्र नजर कहाँ जाए!... ये इतने अंतराल के बाद मिलने का असर था या वाकई वह सुंदर हो गई थी, कहना मुश्किल है। हरी साड़ी और काले ब्लाउज में लिपटा वह गोरा बदन, मंद रोशनी में मानो मुस्करा रहा था। और वह चिपटा हुआ पेट जो अब गर्भावस्था के कारण थोड़ा ऊपर उठ गया था, बड़ा ही प्यारा और मासूम लग रहा था। हथेली से मैंने उसके आकार का जायजा लिया- “मेरा बच्चा! सो रहे हो क्या?”

“चुप रहिए। आपका बच्चा अभी चार महीने में ही आपसे बात करेगा क्या?”

“करेगा क्यों नहीं? आखिर मेरा बच्चा है तो इंटेलिजेंट होगा ही।”...और फिर धीरे-से मैंने उसके पेटीकोट की गाँठ को खोल दिया...।

दो शिथिल शरीर। अस्त-व्यस्त कपड़ों के ढेर पर निढाल दो नग्न बदन। सुख की चरम-सीमा को पाकर मन शायद भविष्य के प्रति आशंकित हो जाता है। उससे लगने लगता है कि कहीं ये सुख अस्थाई तो नहीं! कहीं भविष्य में यह सुख मुझसे छिन तो न जाएगा? अचानक मेरा हृदय अज्ञात भविष्य को सोचकर धड़कने लगा। मैंने महसूस किया कि मेरा साथी भी उसी अवस्था से गुजर रहा है। मेरे दाहिने कंधे पर गर्म द्रव के ढलकने का एहसास हुआ। वह रो रही थी। “क्या हुआ? क्यों रो रही हो?” लगभग झकझोरते हुए मैंने पूछा।

“कुछ नहीं। ऐसे ही।”

“फिर वही बात। बताओगी क्या हुआ?”

“बस ऐसे ही। अचानक ख्याल आया कि अगले हफ्ते आप वापस चले जाएँगे... फिर से वही तन्हाई... कब हम लोग साथ रहेंगे जान?... कितनी खुशनसीब होती है वो लड़की

जो हमेशा पति के साथ रहती है!... आप भी हमेशा मेरे पास रहोगे ना?" वह आधी नींद में आ चुकी थी, फिर भी उसका बड़बड़ाना जारी रहा- "हाँ, प्रॉमिस करो कि मुझे छोड़कर नहीं जाओगे!... सच्ची?... हाँ, मैं पापा से बोल दूँगी कि ये यहीं रहेंगे।... आप यहीं रहकर कोई काम कीजिएगा... मम्मी-पापा भी खुश, मैं भी खुश... रोज सुबह मैं आपको ऑफिस भेजूँगी। आप दिनभर काम करना और फिर रात में हम लोग इसी बेड पे... प्यार...करेंगे।" थोड़ी ही देर में उसकी नाक बजने लगी। लेकिन मेरी आँखें अब भी खुली थीं। छत पर हनहनाते पंखे पर केंद्रित।

***

सीमा ने सच ही कहा था कि ससुराल का मतलब सिर्फ पत्नी नहीं होता है। ससुराल का मतलब सास-ससुर होता है, साली-साला होता है और आस-पड़ोस भी होता है। आपसे उम्मीद की जाती है कि आप सबसे हँसकर बात करें, कोई कितना भी मजाक उड़ाए आप बुरा न मानें। पेट भरा हो फिर भी खाएँ, और अगर ना खा पाएँ, तो ताने सुनने के लिए तैयार रहें। भले ही आपका सेंस ऑफ ह्यूमर कितना भी अच्छा क्यों न हो, आपकी बातों की कोई कद्र नहीं होगी, जबकि सालियों की ऊटपटाँग बातों पर भी तालियाँ बजाई जाएँगी।... तो सासू माँ ने इसी अनुभव के लिए चाचाजी के यहाँ जाने का सुझाव दिया। और ये सुझाव नहीं लगभग आदेश था- "क्यों नहीं जाएँगे? क्या कहेंगे वो लोग, कि दामादजी इतने दिन बाद आए और बिना मिले चले गए!"

"लेकिन भेंट तो हो ही गई है। वहाँ नहीं तो यहाँ सही।" धीरे से मैंने कहा।

"क्यों, आपको लाज लगती है क्या? उनके पाहुन जब भी आते हैं तो यहाँ जरूर आते हैं।... ये सब लोक-व्यवहार की बाते हैं। कभी-कभी दूसरों के लिए भी करना पड़ता है।"

"सुनिए, थोड़ा मिठाई ले लीजिएगा जाते समय।" धर्मपत्नी ने अपना महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किया, मेरे सामाजिक व्यवहार के खराब इतिहास को ध्यान में रखते हुए।

लेकिन कोई किसी को कितना सिखा सकता है और क्या सिखा सकता है? आप किसी को ज्यादा से ज्यादा ये सिखा सकते हैं कि हाथ कैसे मिलाया जाए या नजर कैसे मिलाएँ या ड्रेस कैसी होनी चाहिए या शारीरिक भाषा कैसी होनी चाहिए। लेकिन आप किसी को बात करना कैसे सिखाएँगे? अंतर्मुखी मेहमान, चुपचाप सिर झुकाए, सामने प्रस्तुत जलपान सामग्री से भिड़ा हुआ था। बीच-बीच में हाँ या ना कर देता और फिर खाने में जुट जाता। साली साहिबा ने कटाक्ष किया - "पहले आप खा ही लीजिए, फिर बोलिए। ऐसे खाते-खाते आप क्या बोल रहे हैं कुछ समझ में नहीं आ रहा है।" एक सम्मिलित हँसी। "अरे, खाने दो जीजाजी को, क्यों तंग कर रही हो? पता नहीं जीजाजी को फिर ऐसा खाना मिले न मिले।" दूसरी साली ने चहकते हुए फरमाया। फिर से एक सम्मिलित हँसी। चाची ने हँसते हुये डाँटा अपनी पुत्रियों को- "ऐसे बोलते हैं मेहमान से?" मैं अभी कुछ बोलने के लिए मुँह खोलने ही वाला था कि फुआ बोल पड़ीं- "अब साली लोग जीजा से मजाक न करें, तो किससे करें? लेकिन जीजा भी बेचारे कमजोर पड़ जाते हैं। कहाँ ये दोनों तेज-तर्रार सालियाँ और कहाँ बेचारे राजा हरिशचंद्र!..." हा-हा-हा...हा-हा-हा। मेरी जुबान खुली- "अच्छा, एक बात बताइए..." साली ने बात काट दी- "आप रहने

दीजिए। जितना देर में आप एक बात कहिएगा, उतने देर में हम लोग बाजार से धूम के आ जाएँगे।" हा-हा-हा...हो-हो-हो...हा-हा-हा। सबके पेट में दर्द होने लगा और मेरे दिमाग में। मैं वहाँ से खिसकने का बहाना सोच ही रहा था कि एक दस-बारह साल का लड़का कमरे में अवतरित हुआ। उल्टी टोपी और काला चश्मा। हाथ में चेन और शर्ट के बटन खुले हुए। पहली नजर में ही पता चल गया कि वह सलमान का फैन है। उछलकर सोफे पर लदक गया और दोनों पैर टेबल के ऊपर। चाची ने गर्व से बताया कि वह उनकी बहन का लड़का है। हिमाचल में रहता है। फिर उसकी ओर मुखातिब होकर बोलीं- "जीजाजी से बात करो माइकल। पूछो क्या नाम है, क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं?" च्युइंगम चबाते हुये माइकल ने सवाल दाग- "व्हाट इज योर नेम?" उसके आत्मविश्वास को देखकर मैं दंग रह गया। दस साल की उम्र में मैं अपना नाम नहीं बता पाता था, ये तो दूसरे से पूछ रहा है, वो भी अपने से बड़े इंसान से। मैंने भी उसी तर्ज पर उत्तर दिया- "माइ नेम इज प्रकाश पाठक।" फिर से सबको हँसने का मौका मिल गया- "जीजाजी तो ऐसे जवाब दे रहे हैं, जैसे क्लास टू का बच्चा देता है। एकदम सीरियस होके।" लेकिन वो लड़का नहीं हँसा, वो अब भी गंभीर बना हुआ था- "वेयर डू यू लिव?" अगला प्रश्न उसने पूछा। चाहता तो मैं था कि इस अँग्रेज के बच्चे को एक अच्छा-सा लेक्चर दे दूँ कि सिर्फ अँग्रेजी पटर-पटर करने से नहीं होता है, अदब भी होना चाहिए। लेकिन जब घर के बड़े ही उसे शह दे रहे हों, वहाँ कुछ बोलना बेकार था। बड़ी साली हँस-हँस के थक रही थी-"छोड़ दो माइकल! अब बख्श दो जीजाजी को। बेचारे हिंदी में हकलाने लगते हैं, तो इंग्लिश में क्या हाल होगा?" मुझे समझ में नहीं आया कि इसमें इतना हँसने वाली बात क्या थी! सब हँसे तो मुझे भी हँसना पड़ा।

छोटी साली को लेकिन दूसरी चिंता थी कि अगर जीजाजी को ज्यादा तंग किया गया, तो वो रेस्तराँ नहीं ले जाएँगे। मैंने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा- "जब आप कहें, तब ले चलेंगे। इसमें कौन-सी बड़ी बात है?"

"रहने दीजिए, रहने दीजिए। इतना एहसान मत कीजिए। इतना दिन हो गया आपको आए, कभी अपने मन से पूछा कि चलो आज रेस्तराँ चलते हैं, या फिल्म चलते हैं, या पार्क चलते हैं?"

मैं- "चलिए अभी। फिर मत कहिएगा कि हमने पूछा नहीं।"

छोटी- "बहुत चालाक हैं जीजाजी। जानते हैं कि रात के आठ बजे हम लोग बाहर नहीं जाएँगे, तो पूछ रहे हैं।"

मैं- "ओके बाबा, मैंने कहा तो कि आप जब कहो, जहाँ कहो, जितने बजे कहो, आइ एम रेडी। और कुछ?" मेरे इस जवाब का कोई जवाब नहीं था उनके पास। कुछ सोचने के बाद बड़ी साली ने कहा- "रहने दीजिए जीजाजी। हम लोग तो बस ऐसे ही मजाक कर रहे थे। आपकी स्थिति हमें मालूम है। ऐसे में किसी को हलाल करना अच्छा नहीं लगता।" अचानक से माहौल को गंभीर बना दिया उसने मेरे प्रस्ताव को ठुकराकर। लगा जैसे किसी ने पुराने जख्म को कुरेद दिया हो।

***

नवंबर के महीने में इतनी बारिश का होना वाकई आश्चर्यजनक था। लगातार तीन

दिनों की बारिश के बाद आज थोड़ी-सी राहत है। बादल छँट जाने से आसमान साफ नजर आ रहा है और चौदहवीं के चाँद की रोशनी अँधकार में डूबे गाँव को रोशन करने के लिए पर्याप्त साबित हो रही है। बरसात में भीगे घास पर फच-फच की ध्वनि निकालते हुए प्रकाश चुपचाप चला जा रहा है। दोनों हाथों से पायजामे को ऊपर खींचे हुए, एकांतप्रिय प्रकाश रोज की भाँति अपने गंतव्य पर पहुँचकर रुकता है। आज तो पक्की (सीमेंट की बनी आयताकार पट्टी, जो शायद बच्चों के खेलने के लिए बनाई गई थी) पूरी गीली हो गई है। कुछ देर तक वह चुपचाप किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहता है, फिर चप्पल निकालकर उस पर बैठ जाता है। चाँदनी रात, मंद-मंद शीतल हवाएँ, चारों ओर फैली खामोशी किसी नीरस इंसान को भी शायर बना देती, लेकिन प्रकाश के लिए यह रोज की बात थी। बरगद के झुरमुटों में छिपे चंद्रमा को देखते-देखते जब वह ऊब गया, तो जेब से मोबाइल निकालकर पेरने लगा। अपनी ही खींची तस्वीरों को देखता जाता और जो नापसंद होती, उसे डिलीट कर देता। यह पंकज की फोटो मेरे मोबाइल में! स्साला मतलबी आदमी! डिलीट। यह सोनू की शादी का वीडियो? मेरी शादी में मिलने भी नहीं आया। डिलीट। कंचन! अचानक उसका हाथ रुक जाता है। ...लेकिन अब क्या फायदा? मेरी भी शादी हो चुकी है और वो भी न जाने अब कहाँ होगी! डिलीट। “अरे छोटू, अकेले बैठे क्या कर रहे हो?” संध्याकालीन शौच से लौटते पड़ोसी बिशुन की आवाज ने उसे चौंका दिया। “बस ऐसे ही। बिजली नहीं है, इसलिए यहाँ बैठा हूँ।”

“चलो घर, यहाँ बैठे-बैठे मच्छर क्यों कटवा रहे हो?”

“आप बढ़ो, मैं पीछे आता हूँ।” अचानक उसे ख्याल आया कि घर जाकर भी वह क्या करेगा? वही मनहूसियत भरा माहौल, अँधेरा, मच्छर और तन्हाई। बीवी भी मायके गई हुई है। घर में माँ और भाभी की खिच-खिच सुनने से अच्छा है यहीं बैठा जाए। एक भीगा हुआ कुत्ता गश्त लगाता हुआ उधर आया, उसे देखकर ठिठका, फिर जब आश्वस्त हो गया कि वह उसे तंग नहीं करेगा, तो चुपचाप सूखी जमीन तलाशकर बैठ गया। उसकी नजरें मोबाइल से हटकर कुत्ते की ओर टिक गईं। कुत्ते को एक मक्खी तंग कर रही थी। कभी वह अपने पिछले पैरों से अपने कानों को खुजाता, कभी मुँह घुमाकर दाँतों से अपनी पूँछ को काटता। कितना बेबस है यह जीव! क्या जरूरत थी भगवन्, ऐसे जीवों को पैदा करने की! न खाने का ठिकाना, न रहने का। किसी ने कुछ दे दिया तो खा लिया, कहीं सो गया। क्या अर्थहीन जीवन है! अचानक उसे ख्याल आया कि उसका जीवन भी कुछ खास बेहतर नहीं है। दो साल हो गए हैं पढ़ाई पूरी किए हुए, भी तक वह बेरोजगार है। शादी हो चुकी है और भगवान की दया से वह बाप भी बनने वाला है। एक शादीशुदा आदमी अगर बेरोजगार हो, तो समाज में उसे क्या-क्या ताने सुनने पड़ते हैं, उससे बेहतर कौन जानेगा? आज ही संतोष ने क्या कहा कि प्रकाश, जल्दी से कोई नौकरी ढूँढ़ लो नहीं तो बीवी किसी और के साथ भाग जाएगी। बात पेट भरने और तन ढँकने की नहीं है, बात है सम्मान से जीने की। खासकर जब आप इंजीनियरिंग किए हुए हों, तो लोगों की उम्मीदें बढ़ जाती हैं।

फोन की आवाज से उसकी विचार-शृंखला टूटती है। मित्र अजय का फोन था- “क्या प्रकाश, क्या चल रहा है? ...अच्छा सुनो, तुम्हारा रोल नंबर बताओ, इंडियन ओवरसीज बैंक का रिजल्ट निकला है।” “एक मिनट रुकना।” वह फोन काट देता है। फोन के मैसेज

बॉक्स में सेव रोलनंबर निकालता है और उसे अजय को फॉरवर्ड कर देता है। उम्मीद की हल्की-सी आहट से उसका दिल जोरों से धड़कने लगता है। वर्षों से खुशखबरी सुनने को तरस चुके उसके कान खड़े हो जाते हैं।

"...तो प्रकाश, तुमको क्या लग रहा है, तुम्हारा हुआ है या नहीं?"

"अबे पहेलियाँ मत बुझाओ, जल्दी बताओ क्या हुआ?"

"वैसे तुम कैसा फील कर रहे हो अभी?"

"मुझे लग रहा है, जैसे मैं हॉट सीट पर बैठा हूँ और तुम मुझे केबीसी खिला रहे हो!"

"हा-हा-हा, प्रकाश! आज का दिन और समय नोट कर लो। आज के बाद तुम मुझे जिंदगीभर याद रखोगे। हाँ प्रकाश, तुम बैंक मैनेजर बन गए।"

अप्रत्याशित मिली खुशी को हजम करना कभी-कभी कठिन होता है। वह कुछ देर तक मतिशून्य बैठा रहता है। घर में इस खबर को सुनाने से पहले इसकी सत्यता जाँच लेनी चाहिए। वह एक अन्य दोस्त को, जिसके पास इंटरनेट था, फोन करता है। पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद उसके हाथ अपने आप सीमा को कॉल कर देते हैं। फिर कुछ पल अविश्वास के, खुशी के, संतोष के, धन्यवाद के। न उसे कुछ समझ में आता था, न सीमा को कि क्या बात करे। वह दौड़कर अपने परिवार में यह खबर सुनाने जाती है, इधर प्रकाश अपने अंदाज में माँ से धीरे-से कहता है- "माँ, एक छोटी-सी खुशखबरी है।"

"क्या?"

"बैंक के रिटन में हो गया है मेरा।"

उस रात वह सो नहीं सका। अनेक कल्पनाएँ, अनेक यादें। करवट बदल-बदल कर वह तीनों कालों- भूत, वर्तमान और भविष्य में जी रहा था। एक-एक कर कई यादें उसकी आँखों के सामने चलचित्र की भाँति आती गईं और वह उन यादों में खोता चला गया...

***

तुम्हारे लिए

दो महीने बाद...

राँची के अपने आवास में बैठा प्रकाश अपने मित्रों के साथ लैपटॉप पर फिल्म देख रहा था। दोपहर के खाने के तुरंत बाद पढ़ाई नहीं हो पाती है, ऐसा मानना था निशांत का। इसलिए वह या तो मित्रों से गप करता या फिर लैपटॉप से छेड़छाड़। और मित्रगण भी उसका बखूबी साथ दे रहे थे। रूम में प्रवेश करते ही धनेश्वर चिल्लाया- "वाह बेटा लोग! खूब फिल्म देख रहे हो?" धनेश्वर पास के ही एक प्राइवेट इंजीनियरिंग कॉलेज में प्राध्यापक था और समूह का एकमात्र कमानेवाला। इसलिए उसका हक था कि वह उन लोगों पर तंज कसे। अपना अव्वलपन झाड़े। बैग पटकते हुए उसने अपना फ्रस्टेशन निकाल- "स्साला फिर नहीं हुआ।... अरे तुम भी तो दिया था न इंडियन ओवरसीज बैंक का इंटरव्यू प्रकाश? क्या हुआ तुम्हारा?"

"रिजल्ट निकल गया क्या?" प्रकाश थोड़ा घबरा गया। "अबे कहाँ रहता है तुम? खाली फिल्म देखोगे तो कहाँ से पता चलेगा?"

निशांत ने झटपट लैपटॉप में इंटरनेट कनेक्ट किया। सभी ये जानने के लिए उतावले थे कि प्रकाश का रिजल्ट क्या हुआ। औरों के लिए जहाँ ये सिर्फ एक खबर होती, उसके लिए ये जीवन-मरण का प्रश्न था। धनेश्वर ने अपना अनुभव साझा किया- "पहली बार में इंटरव्यू निकाल लेना आसान नहीं है। ये मेरा तीसरा इंटरव्यू था। जब मेरा नहीं हुआ, तो प्रकाश का कहाँ से हो जाएगा!" गुरुभाई ने डाँटा उसे- "स्साला तुम यही मना रहा है कि इसका भी न हो पाए? जलनखोर आदमी!"

"अबे हम तो चाहते हैं कि इसका हो जाए। लेकिन गुरुभाई इतना आसान नहीं होता

है पहली बार में ही इंटरव्यू निकाल लेना। एक-से-एक तेज लड़का हम देखे हैं।"

सच में, उस दिन उसे किस्मत पर यकीन हो आया जब कंप्यूटर की स्क्रीन पर उभरे रिजल्ट में अपना रोलनम्बर देखा। एक नहीं कई बार देखा। बार-बार संख्याओं का मिलान किया। "अरे कितनी बार देखोगे, हो गया। चलो एक और मैनेजर अपने बैच से बन गया।"

"और तुम बे धनेश्वर। क्या बोला था कि मेरा नहीं हुआ तो प्रकाश का कहाँ से हो जाएगा? देख लिया न! जो गरजते हैं सो बरसते नहीं और जो बरसते हैं वो गरजते नहीं।" गुरुभाई पूरे फार्म में आ चुका था- "स्साला, प्रकाश को क्या समझता है बे तुम? अगर तुम्हारे जैसा इसको रिजर्वेशन मिलता न, तो कब का हो गया होता।"

धनेश्वर का मुँह देखने लायक था। झेंप छुपाए हुए बोला- "ये तो सच में कमाल हो गया। कोई मंतर-जंतर लिए थे क्या प्रकाश? हमें भी बताओ।"

प्रकाश को याद आया कि सच में इंटरव्यू में जाने से पहले माँ ने उसे एक जंतर (यंत्र) दिया था। वह इन सब चीजों में यकीन नहीं करता था, फिर भी न जाने क्यों उसने वह ताबीज गले में लटका लिया था। शायद वह कोई कसर नहीं छोड़ना चाहता था, कोई दुआ, कोई मन्नत, कुछ भी काम कर जाए। लेकिन जो चीज काम कर गई थी, वो थी प्रकाश की सज्जनता। इंटरव्यू पैनल में उपस्थित सभी सदस्यों ने ये अनुभव किया कि इस लड़के का होना ही चाहिए। न कोई लाग-लपेट, न कोई झूठा प्रदर्शन। उसने अपनी सारी बातें सच-सच बता दी थीं। वो मोटा-सा आदमी बहुत प्रभावित हुआ था प्रकाश से। "अच्छा तो अरेंज मैरिज को लव मैरिज बना दिया आपने। बहुत खूब।" पास में बैठी वो महिला भी मुस्कराई थी।

सीमा की अधूरी जिंदगी आज पूर्ण हो गई थी। अपने गोल हो चुके पेट को सँभालती वह दौड़ी-दौड़ी नीचे आई थी। आते ही माँ से लिपट गई- "इनका हो गया बैंक में। फाइनल सेलेक्शन।" उनकी माता थोड़ी धैर्यवान थी, लेकिन पिताजी एकदम भावुक। उनकी जुबान से कुछ नहीं निकला, लेकिन आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। थोड़ी देर तक सभी अविश्वास और खुशी के माहौल में ईश्वर को धन्यवाद देते रहे। "जाइए, जाकर एक किलो मिठाई लेते आइए। कितना आँसू गिराइएगा?" सीमा की माँ ने आदत अनुसार प्यार भरी डाँट लगाई। "एक किलो मिठाई से क्या होगा? पूरा मोहल्ला में बाँटेंगे हम।"

***

जॉइनिंग से सिर्फ तीन दिन पहले प्रकाश को जॉइनिंग लेटर मिला। अचानक से उसके होश गुम हो गए, जब उसने देखा कि इतवार को जॉइन करना है और आज बुधवार है। वो भी ऐसी जगह जिसकी कल्पना भी नहीं की थी उसने। हाँ, उसने ये स्वप्न जरूर देखा था कि एक ट्रेन बिना पटरियों के हवा में दौड़ी जा रही है और वह हाँफता हुआ उसके पीछे भागा जा रहा है... लेकिन चेन्नई? बहुत हिम्मत कर उसने दिल्ली का सफर किया था। बिहार-झारखंड से बाहर यही उसकी एकमात्र यात्रा थी। माँ की भी खुशी और उत्साह पर ग्रहण लग गया। "हम तो सोचे थे कि घर के आस-पास ही देगा। या नहीं तो राँची-पटना या बोकारो-टाटा दे देता। एकदम से सात समंदर पार भेज दिया। कैसे रहोगे मद्रासी लोगों के बीच? खाना-पीना, बोली-भाषा सबकुछ अलग है उन लोगों का।"

“अभी सिर्फ ट्रेनिंग के लिये बुलाया है चेन्नई। सात दिन के लिए। उसके बाद ही पोस्टिंग का पता चलेगा।”

माँ को आशा जगी- “भगवान करे इधर ही दे दे। सुनते हैं कि हर नौकरी में च्वाइस पूछा जाता है। तुमसे अगर पूछे तो यहीं कोडरमा का दे देना।”

पोस्टिंग तो बाद की बात थी, प्रकाश के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या थी चेन्नई पहुँचने की। मात्र तीन दिन में चेन्नई पहुँचना, वो भी कोडरमा जैसी छोटी जगह से। यहाँ से राँची निकलना होगा, फिर राँची से चेन्नई। मित्र निशांत ने इंटरनेट पर देखकर बताया- “बहुत ज्यादा वेटिंग है स्लीपर में, प्रकाश। एसी थ्री टीयर में तीन वेटिंग है। कहिए तो बना देते हैं टिकट।”

“तीन वेटिंग तो कन्फर्म हो जाना चाहिए, क्यों?”

“हाँ-हाँ, आराम से। आप बस अपने एटीएम का नंबर और पासवर्ड बता दीजिए। अभी बना देते हैं।”

तो निकल पड़ा प्रकाश एक बड़ा-सा बैग लिए, माँ का आशीर्वाद, सीमा का प्यार और खुद की हिम्मत के सहारे एक अनजाने सफर पर। बड़ा-सा बैग इसलिए कि उसे ट्रेनिंग के तुरंत बाद पोस्टिंग दे दी जाएगी। उसे उधर से ही एक नई जगह पर निकल जाना होगा। उसे ख्याल आया कि सीमा अपनी गर्भावस्था के अंतिम चरण में थी। ऐसे में उसे छोड़कर जाना... पता नहीं छुट्टी मिलेगी भी या नहीं! ठीक है कि वह अपने परिवार के साथ है, फिर भी...।

लेकिन प्रकाश शायद भूल गया था कि देखभाल की जरूरत उसे ज्यादा है, सीमा को नहीं। जिस तरह से वह उसके हर निर्णय में शामिल होने लगी थी, उसे एक आदत-सी पड़ गई थी। और आज भी एक छोटे बच्चे की माँ की तरह उसने अपने पति से छोटी-छोटी बातों का जिक्र किया था। कि एकांउट में पूरे पैसे जमा करवा लिए कि नहीं। अभी एक महीने तो घर से ही खर्च करना पड़ेगा। कि डॉक्युमेंट्स सब सही से रख लिए हैं न। कि रास्ते के लिए कुछ लिया कि नहीं। डेढ़ दिन का सफर है, तो खाने-पीने का पूरा इंतजाम होना चाहिए। कि फोन रिचार्ज करवा लिया कि नहीं। उधर तो रोमिंग कटेगा। साथ ही ये भी सलाह दी कि जाते ही नई सिम ले लेना।

“और हाँ, पूरे मन से अपने काम पर ध्यान दीजिएगा। मेरे बारे में सोच-सोच कर परेशान होने की जरूरत नहीं है। यहाँ लोग हैं मेरी देखभाल के लिए। सो कंसन्ट्रेट ऑन योर वर्क। ओके?”

“तुम्हारा डेट कब है?”

“डेट को छोड़ो ना। डेट तो 28 का ही है। लेकिन लगता नहीं है कि...”

“मतलब पाँच दिन बाद।... पता नहीं मैं कब आ पाऊँगा?”

“क्यों फालतू बात करते हैं? एक बार ट्रेनिंग पूरी हो जाए, नई जगह पर जॉइन कर लीजिए, पाँच-दस दिन में जब सब सेट हो जाएगा तो छुट्टी ले लीजिएगा। ऐसी हालत में कोई भी छुट्टी दे देगा।”

“और फिर हम लोग साथ में रहेंगे।... हमेशा-हमेशा के लिए।”

“पागल हैं क्या? इतने छोटे बच्चे को लेकर मैं आपके पास रहूँगी? कम-से-कम छह महीना। उसके बाद ही हम बाहर निकलने का सोचेंगे।”

धनबाद से एलेप्पी तक जाने वाली धनबाद-अलप्पुजा एक्सप्रेस अपने निर्धारित समय 2:50 पर राँची के प्लेटफार्म पर आकर लगी। किसी अनजान, गोल-गोल लिपि में गाड़ी का नाम लिखा हुआ था। शायद तमिल या मलयालम में। “लीजिए, आ गई आपकी गाड़ी।” ट्रॉली सरकाते हुए निशांत ने कहा। यूँ तो प्रकाश ने पहले बांग्ला भाषा को देखा और सुना था। थोड़े-बहुत प्रयास से बांग्ला को पढ़ा जा सकता था। लेकिन ये तो किसी हड़प्पाकालीन खुदाई से प्राप्त लिपि लग रही थी। “ये तो कुछ भी नहीं है। जब आप तमिल लोगों को बात करते सुनिएगा न, दिमाग ब्लास्ट हो जाएगा। एक वर्ड नहीं समझ में आएगा।” निशांत जो पहले चेन्नई जा चुका था, ने एक खौफनाक तस्वीर पेश की वहाँ की- “एक भी नॉर्मल आदमी नहीं दिखेगा आपको वहाँ। एकदम धार्मिक सीरियल के राक्षस जैसा। मोटा-मोटा, काला-काला। लुंगी और चप्पल में घूमते रहता है सब जगह। मोपेड जो पहले नहीं चलता था इधर, आज भी...”

पहले सीट तलाश ली जाए। बाद में जो होना है, वो तो हो के रहेगा। प्रकाश अब तक इस गलतफहमी में था कि तीन वेटिंग तो आराम से कन्फर्म हो जाएगी या कन्फर्म नहीं भी हो पाई, तो भी वेटिंग वाले आरक्षित कोच में सफर कर सकते हैं। इसलिए उसने टिकट की वर्तमान स्थिति जानने की भी कोशिश नहीं की। झटका उसे तब लगा जब टीटीई ने टिकट के पीएनआर को देखकर बताया- “ये टिकट तो कैंसिल हो चुका है।”

“मतलब हमें सीट नहीं मिलेगा?” प्रकाश ने जानना चाहा।

“सीट की बात करते हो! मैं कह रहा हूँ कि ये टिकट ही कैंसिल हो चुका है।”

“लेकिन वेटिंग वाले कोच में सफर तो कर सकते हैं?”

“भैया, आपने इंटरनेट से टिकट बुक कराया है न? तो ई-टिकट जब कन्फर्म नहीं हो पाता है, तो ऑटोमैटिक कैंसिल हो जाता है।”

“तो मेरा पैसा?”

“वो आपके एकांउट में वापस आ जाएगा। दो-तीन दिन में।”

अब तो जैसे प्रकाश को किसी ने स्टेच्यू बोल दिया हो। ऐसे हालात में उसका दिमाग काम करना बंद कर देता है। “तो कुछ उपाय?” निशांत ने जानना चाहा, जिसका टीटीई ने बहुत बेरुखी से जवाब दिया- “हम क्या बताएँ, आपको जैसे जाना है जाइए। जनरल में चले जाइए।” मरता क्या न करता। 36 घंटे के लंबे सफर को भी जनरल में तय करने का फैसला ले लिया उसने। निशांत को उसने टिकट लाने के लिए भेज दिया और खुद अनारक्षित बोगी में सीट खोजने चल पड़ा। चूँकि यहाँ ट्रेन 15 से 20 मिनट रुकती थी, इसलिए टिकट लेना कोई बड़ी समस्या नहीं थी। समस्या थी भेड़-बकरी की तरह ठुँसे लोगों वाले सामान्य कोच में दाखिल होने में। हाँ, दाखिल होने में... सीट लेना तो दूर की बात थी। अगर हाथ खाली होते तो और बात थी, बड़े-बड़े बैग लेकर? अनिश्चितता की स्थिति में कुछ देर तक खड़े रहने के बाद उसने निशांत को कॉल कर दिया

- “वापस आ जाइए निशांत जी। टिकट मत लीजिए।”

-”क्यों, क्या हुआ?”

“बहुत भीड़ है। अंदर घुसने का भी जगह नहीं है।”

और फिर उसकी आँखों के सामने से एलेप्पी एक्सप्रेस सरकती हुई अपने गंतव्य की ओर चली। ट्रेन का आखिरी डिब्बा जब आँखों से ओझल हो गया, तब सामने से निशांत

आता हुआ दिखाई दिया। चेहरे पर निराशा के भाव लिए, आते ही उसने चिल्लाना शुरू कर दिया- “क्यों छोड़ दिया आपने ट्रेन, प्रकाश जी? मैं कांउटर तक पहुँच ही गया था कि आपका कॉल आ गया। अब कैसे जाइएगा आप?”

“फ्लाइट। आपने तो फ्लाइट में सफर किया है न? तो आपको आइडिया होगा ही कि कैसे क्या करना है?”

“मैंने किया है, लेकिन बहुत पहले। वो भी मम्मी-पापा के साथ।... अच्छा, चलिए पता करते हैं।”

इंटरनेट का मनुष्य जीवन में क्या योगदान है, उस दिन प्रकाश को पता चला। गूगल से पता चला कि ‘मेक माई ट्रिप’ एक वेबसाइट है, जिससे घर बैठे प्लेन का टिकट बुक कराया जा सकता है। सारे उपलब्ध विकल्प सामने आ जाते हैं, जिनमें से आप अपनी सुविधा और जेब के हिसाब से टिकट बुक करा सकते हैं।

“आपके लिए अच्छा यही रहेगा कि आप कोलकाता से फ्लाइट पकड़ें। राँची से डायरेक्ट फ्लाइट नहीं है और आपको मँहगा भी पड़ेगा।” तो इस प्रकार उसकी पहली हवाई यात्रा जो कोलकाता से चेन्नई के बीच थी, का टिकट बुक हो गया। इंडिगो के प्लेन नं 6E-271 से जो इतवार को सुबह साढ़े छह बजे कोलकाता से खुलेगी और साढ़े आठ बजे चेन्नई उतार देगी। मात्र दो घंटे में वो भी इतने कम खर्च पर। उसे यकीन नहीं हो रहा था कि मात्र पाँच हजार में इतने आराम से वो चेन्नई जा सकता है। सच में, इमरजेंसी के लिए फ्लाइट बहुत अच्छी है। और ट्रेन के एसी कोच का किराया भी तो दो-ढाई हजार पड़ ही जाता है।

सीमा ने जब सुना कि उसकी ट्रेन छूट गई है, तो एकबारगी उसे यकीन ही नहीं हुआ। “क्यों मजाक कर रहे हैं? बताइए न, ट्रेन कब खुली?”

“ट्रेन तो अपने समय से ही खुली। लेकिन हम नहीं चढ़ पाए।”

“फिर से मजाक! ठीक है हम फोन रख रहे हैं।”

उसके बाद प्रकाश ने घटनाओं का जो विवरण देना शुरू किया, तो सीमा की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। लगा उसके शरीर का सारा रक्त निचोड़ लिया गया हो। लगभग लड़खड़ाती जुबान से उसने पूछा-”लेकिन अब क्या होगा? इतने मेहनत से आपने एक नौकरी पाई और इतनी आसानी से उसे छोड़ दिया?... क्यों किया आपने ऐसा, क्यों?”

“तो क्या करता? दरवाजे पर लटक के डेढ़ दिन का सफर करता?”

“लेकिन आगे क्या सोचा है? बाद में जॉइन करने देंगे? कोई दिक्कत नहीं होगी?”

“नहीं, मैं अपने तय समय पर ही जॉइन करूँगा।”

“क्या मतलब?”

“फ्लाइट से जाऊँगा। और क्या?”

मिडिल क्लास फैमिली के लिए उस जमाने में फ्लाइट से सफर करना बहुत बड़ी बात थी। इसलिए सीमा को यकीन दिलाने में उसे वाकई समय लगा कि वह सच में फ्लाइट से जा रहा है। “लेकिन आपके सारे पैसे तो टिकट में खर्च हो गए।... ठीक है, कल मैं आपके खाते में दस हजार डलवा देती हूँ। पापा से कहकर।”

“दस क्यों?”

“पास में पैसा रहना चाहिए। जब आपकी सैलरी आएगी, तो वापस कर दीजिएगा।

ब्याज के साथ।”

***

कोलकाता के नेताजी सुभाषचंद्र बोस एयरपोर्ट का डोमेस्टिक टर्मिनल। सुबह के पाँच बजे जब और लोग स्वप्न की दुनिया में विचरते हैं, यहाँ की दुनिया कुछ और ही थी। चुस्त-मुस्तैद सुरक्षाकर्मी हाथों में मेटल डिटेक्टर लिए और धीरे-धीरे सरकती लंबी-सी लाइन। अब उसे समझ में आया कि क्यों डिपार्चर टाइम से दो घंटा पहले आने को लिखा था टिकट में। सुरक्षा जाँच के इतने चरण! पहले मनुष्य की, फिर सामान की जाँच। बैग, बेल्ट, लैपटॉप आदि सामानों को एक कन्वेयर बेल्ट पर रखा जाता है, जो एक स्कैनर से होकर गुजरती है। उसके बाद आपके बैग को आपसे जुदा कर दिया जाता है। एक स्टिकर चिपका दिया जाता है सामान पर, जिसमें यात्री का नाम और अन्य जानकारियाँ अंकित होती हैं। उसके लिए ये राहत की बात थी कि उसके बैग का वजन 14.5 किलो ही आया। उसका अनुमान था कि ये 20 किलो से ज्यादा हुआ, तो अतिरिक्त शुल्क भरना पड़ेगा। खैर, बोर्डिंग पास लेकर वह अपने गंतव्य अर्थात गेट नं 5 की ओर चला।

वेटिंग हॉल के सोफे पर बैठे एक सज्जन, कागजों से भरी एक फाइल उलट-पुलट रहे थे। उसकी नजर उस पन्ने पर अटक गई, जिस पर इंडियन ओवरसीज बैंक लिखा था। अरे! ये तो जॉइनिंग लेटर है! छूटते ही उसने पूछा- “आप इंडियन ओवरसीज बैंक में जॉइन करने जा रहे हैं क्या?”

“हाँ, पर क्यों?”

“मैं भी जा रहा हूँ वहीं। इसलिए पूछा।”

“ओह, क्या बात है!... तब तो हमारी मंजिल एक है।... माइसेल्फ पवन कुमार फ्रॉम चाईबासा।”

“अच्छा, तो आप मेरे पड़ोसी हुए। मैं कोडरमा से हूँ... लगता है आपको भी लेटर लेट से मिला है, तभी फ्लाइट से जा रहे हैं?”

“सबको लेट से मिला है। इस बैंक की पॉलिसी नहीं समझ में आती। चार महीना लगाया रिटन का रिजल्ट निकालने में। फिर दो महीना लगाया इंटरव्यू का रिजल्ट निकालने में। फिर अचानक इसको क्या हड़बड़ी हो गई कि एक सप्ताह के अंदर सबको जॉइनिंग लेटर भेज दिया। वो भी तत्काल रिपोर्ट करना है।”

“इसको चेन्नई बुलाने की क्या जरूरत थी?”

“क्योंकि इसका हेड ऑफिस चेन्नई में है और इसकी ज्यादातर ब्राँच तमिलनाडु में हैं।”

“कहीं पोस्टिंग भी चेन्नई में न दे दे।” प्रकाश ने मजाक में कहा। “बिल्कुल दे सकता है। आपको पता है कि नहीं, इंडियन ओवरसीज बैंक का लगभग एक हजार ब्राँच सिर्फ तमिलनाडु में है। और पिछले बैच के बहुत-से लड़कों को दिया भी है। चेन्नई छोड़िए सर जी, कितनों को तो एकदम दूर गाँव में फेंक दिया है। कन्याकुमारी, मदुरई, नागापट्टिनम, तंजौर... कहीं भी।”

“क्यों डरा रहे हो महाराज! हवाई जहाज के नाम पर ऐसे ही आधा खून सूख गया है।”

किसी दैत्याकार परिंदे की भाँति दोनों डैने फैलाए उस विशालकाय जहाज ने जोर का शोर किया और फिर वह आकृति किसी खिलौने की भाँति सरकने लगी। बिल्कुल धीरे-धीरे अपने पथ पर लुढ़कती हुई। क्रमशः बढ़ती हुई उसकी गति, फिर अचानक ही गोली के वेग से रनवे पर दौड़ने लगी।... और फिर जमीन पीछे छूट गई। शहर की ऊँची-ऊँची इमारतें, सड़कें, बाग-बागीचे, नदी-तालाब, सब किसी कागज पर उकेरी पेंटिंग की तरह लगने लगे। अफसोस कि उसका मोबाइल स्विच ऑफ करने के लिए कहा गया था, नहीं तो वह इस अद्भुत दृश्य को कैमरे में कैद कर लेता। उसे फिर से अफसोस हुआ, जब उसने देखा कि बादलों के टुकड़े रुई के गुच्छे की भाँति उसकी खिड़कियों से टकरा रहे थे। लगभग 35, 000 फीट की ऊँचाई पर, दूर-दूर तक सिर्फ बादल ही बादल नजर आ रहे थे। बादलों का समुद्र। एक पल के लिए उसे लगा जैसे कि यान चुपचाप स्थिर खड़ा है।... सच में, हवाई सफर जितना सोचा था, उससे ज्यादा रोमांचक है।

चेन्नई की सरजमीं का पहला नजारा। नीले समुद्र के ऊपर चील की भाँति तैरते वायुयान से दिखा नारियल के वृक्षों का समूह। छोटी-छोटी बस्तियाँ शायद मछुआरों की थीं। फिर चौड़ी सड़कें, उन पर खिलौनों की तरह सरकते वाहन, ऊँची इमारतों की शृंखला, एक-दो छोटे जलाशय। “कुछ ही क्षणों में हमारा विमान चेन्नई के के.कामराज एयरपोर्ट पर लैंड करने वाला है। यहाँ का तापमान 27^0C है और मौसम साफ है। आर्द्रता 80 प्रतिशत है।” एयर होस्टेस ने उद्घोषणा की। “हम अपने सभी यात्रियों का चेन्नई के के.कामराज हवाई अड्डे पर स्वागत करते हैं। धन्यवाद।”

बाहर हाथों में तख्तियाँ लिए लोग अपने रिश्तेदारों का इंतजार कर रहे थे। और उनका इंतजार ऑटोवाले कर रहे थे। अभी बाहर कदम ही रखा था कि चार-पाँच ऑटोवालों ने उन्हें घेर लिया। हाथ के इशारे और तमिल जुबान में कुछ कहा, जिसका मतलब था- कहाँ जाना है? दोनों एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तब एक मोटा-सा ड्राइवर हँसते हुए बोला- “तमिल तेरिया ला? वेयर यू गो?”

“अन्ना नगर।”

“इंदे अन्ना नगर वेयर?”

प्रकाश ने अपना जॉइनिंग लेटर निकाला। “ओल्ड थिरूमंगलम, जवाहर लाल नेहरू रोड।”

“ओह तिरूमंगलम? वांगा-वांगा।” और फिर बिना कुछ सुने वह सामान कंधे पर उठाकर चलने लगा। पीछे-पीछे दोनों मित्र उसे आवाज दिए जा रहे थे- “हेलो... ओ मिस्टर... हाऊ मच फेयर? मनी?” लेकिन वह चलता रहा और अपने ऑटो के पास पहुँचकर ही रुका। फिर से प्रकाश ने पूछा- “मनी? हाऊ मच?”

“थ्री हंड्रेड।”

“थ्री हंड्रेड? इट्स टू मच!”

“नो टू मच। यू आस्क एनीबडी। वेरी फार...15 किलोमीटर।” और फिर उसके दो-तीन साथी वहाँ आ गए और एक स्वर में उसका समर्थन किया- “यस-यस, वेरी फार। थ्री हंड्रेड ओके।” मोटे-से आदमी ने ऐसा मुँह बनाया, जैसे उसे किसी गलत इल्लाज से बरी कर दिया गया हो। मुँह में भरा मसाला थूककर उसने गाड़ी स्टार्ट की और चेन्नई की चौड़ी

सड़कों पर गाड़ी अपनी क्षमता से तेज दौड़ने लगी।

***

"तो आखिरकार आपने जॉइन कर ही लिया? आज मैं बहुत खुश हूँ।" सीमा आज सच में बहुत खुश थी या कहिए संतुष्ट थी। एक बोझ उतर गया था उसके दिल से। "पापा आपकी तारीफ करते नहीं थक रहे हैं। कह रहे थे कि आज मेरा सीना चौड़ा हो गया गर्व से। पहले हमको लगता था कि दामाद जी इतना पढ़ते हैं, लेकिन इनका कहीं होता क्यों नहीं है। कहीं वो दिखावा तो नहीं करते?... लेकिन आज यकीन हो गया कि बहुत होनहार हैं। इतना उतार-चढ़ाव के बाद भी, हर बाधा-रुकावट को पार करके अपनी मंजिल तक पहुँचे हैं। इतना संघर्ष कम ही लोग कर पाता है।... शादी के बाद पढ़ाई करना...।"

"अच्छा, इस चापलूसी से काम नहीं चलेगा। दहेज तो हम लेकर रहेंगे।" प्रकाश ने कहा।

"किस बात का दहेज, सुनें जरा हम?"

"दामाद मैनेजर हो गया है, इस बात का। तीन लाख में कहीं बैंक मैनेजर मिलता है? बहुत सस्ता में निपटा लिए आपके पिताजी।"

"उनकी किस्मत! या कहिए मेरी किस्मत!... जब शादी किए थे उस समय नहीं थे न मैनेजर। उस समय जो थे उसके हिसाब से बहुत मिला था।"

"तुम मेरा अपमान कर रही हो। मेरी मेहनत और लगन का कोई महत्व नहीं?"

"ऐसा क्यों कहते हैं? ये तो आपको भी पता है और मुझे भी कि पापा को अगर मैं एक बार कह दूँ, तो वो कहीं से भी जुगाड़ करके आपको पैसा दे देंगे।... लेकिन अभी उनकी स्थिति आपको भी मालूम है। दो-दो बेटों को पढ़ाने के चक्कर में...।"

"अच्छा ठीक है, अभी माफ कर देते हैं ससुर जी को।... और तुम्हारा क्या हाल है?"

सीमा का हाल ठीक नहीं है। अचानक ही शाम को तेज दर्द उठा था पेट में। सबको महसूस हुआ कि ये प्रसव की पीड़ा है। आनन-फानन में गाड़ी बुला ली गई। अस्पताल में दाखिला भी हो गया। लेकिन ये क्या! दर्द बढ़ने के बजाय घटने लगा। एकाध घंटे इंतजार करके सभी वापस लौट आए। खाली हाथ। महिलाएँ हँसते हुए कह रही थीं- "लगता है पंडितजी को अभी मन नहीं है दुनिया देखने का।"

तीसरे या चौथे दिन पोस्टिंग्स की घोषणा हो गई। दोपहर से ही सभी प्रशिक्षुओं में अफरा-तफरी मची हुई थी। जिसे मनपसंद पोस्टिंग मिली थी वह खुशी से चिल्ला रहा था, जिसे खराब पोस्टिंग मिली थी वह रो-रो के चिल्ला रहा था। कोई अपनी पहुँच का इस्तेमाल कर रहा था, तो कोई घर की खराब स्थिति का हवाला दे रहा था। लड़कियों की पद-स्थापन में खासा ध्यान रखा गया था, फिर भी कई आँसू गिराते हुए दिख जा रही थीं। कि उनके पति की पोस्टिंग अमुक जगह पर है और उन्हें राँची पोस्टिंग दे दी गई।

...अरे राँची तो बहुत अच्छा है, मेरा देखो धनबाद में फेंक दिया है

...क्या खाक अच्छा है राँची? ये भी कोई रहने की जगह है। दिल्ली-नोएडा वगैरह देता। अब इन लड़कियों से कोई बताए कि लड़कों की क्या स्थिति है। जो राँची-दिल्ली के नाम पर रो रही हैं, उन्हें बताया जाए कि कोयंबतूर, त्रिपुर, नागापट्टिनम, मदुरै, तंजावुर, पुद्दुचेरी आदि किस चिड़िया के नाम हैं! कुछ जगहों के नाम तो पढ़े भी नहीं जाते, इतने

लंबे हैं।

शाम को कार्मिक प्रशासनिक विभाग के महाप्रबंधक (जनरल मैनेजर) का स्वागत अभिभाषण था। दोपहर में जिस तरह से पोस्टिंग को लेकर अफरा-तफरी मची थी, उससे पोस्ट लंच सेशन इन्हीं चर्चाओं में बीत गया। अब भी चेहरों पर इन्हीं पोस्टिंग्स का असर साफ दिखाई दे रहा था। खुश चेहरे, लटके चेहरे, संतुष्ट चेहरे, तटस्थ चेहरे। और जीएम साहब ने भी इन मनोभावों को पहचाना था- "पोस्टिंग्स कैसी रही? सभी खुश हैं?... नहीं? तो कहाँ चाहिए, सबको बिहार भेज दें? देखिए, इस बार के परिणाम में 1, 500 उम्मीदवारों में 500 बिहार-झारखंड से आए हैं। जाहिर है, सभी बिहार-झारखंड ही जाना चाहेंगे। अब आप ही बताइए, ये कैसे मुमकिन है? साउथ के ब्राँचों में फिर कौन काम करेगा? वैसे भी ये स्थायी पोस्टिंग नहीं हैं। ट्रेनिंग फेज के दौरान आपको सालभर के भीतर दो यी तीन जगहों पर जाना पडेगा। जो अभी नॉर्थ में जा रहे हैं, उन्हें साउथ जाना पड़ेगा और जो साउथ में हैं, उन्हें नॉर्थ पोस्टिंग मिलेगी। सो डोंट वरी। भारत भ्रमण का आनंद लीजिए, वो भी बैंक के पैसे से।" सभी ने तालियाँ बजाईं, खुश चेहरों ने भी और निराश और उदास चेहरों ने भी।

प्रकाश के लिए ये राहत की बात थी कि उसकी पोस्टिंग मेरठ रीजन में हुई थी। जिस तरह से उसके अन्य साथियों को उठा-उठा कर पुणे, मुंबई, बेंगलुरु और हैदराबाद फेंका गया था, वह काफी लकी फील कर रहा था। कम-से-कम हिंदी भाषी क्षेत्र में तो है। लेकिन सीमा को जैसे करंट मार गया हो-

"क्या! मेरठ? लेकिन आप तो कह रहे थे कि घर तरफ ही देगा?"

"बैंक ऑफ इंडिया में मेरे दोस्त का होम पोस्टिंग हुआ है।... लेकिन यहाँ तो ऑल इंडिया टूर करा रहा है। मैं तो फिर भी खुशनसीब हूँ, मेरे दूसरे मित्रों को भारत के कोने-कोने में पटक दिया है।"

"अच्छा हुआ आपका यूपी में दे दिया, नहीं तो मैं आपके पास कभी नहीं आती।"

"ज्यादा खुश होने की जरूरत नहीं। हो सकता है छह महीने बाद मुझे साउथ जाना पड़े। ये बैंक की ट्रांसफर पॉलिसी है।"

"तो आप जाइएगा अकेले। मैं नहीं जाने वाली।"

"कैसी पत्नी हो तुम? सीता तो जंगल तक गई थी अपने पति के साथ।"

"हाँ, तो मैं सीता नहीं हूँ। मेरा बच्चा काला हो जाएगा वहाँ जाकर। न बाबा न। सॉरी।"

***

आज सुबह से ही प्रकाश का मन विचलित है। कल रात को सीमा को अस्पताल में एडमिट कराया गया और इधर सुबह-सुबह माँ ने ऐसी खबर सुनाई कि...। गाँव की ही एक लड़की खुशबू। दो दिन पहले ही माँ बनी थी। कितनी खुश थी उसकी बहन। चहकते हुए फोन किया था माँ को- "चाचीजी, लड़का हुआ है। एकदम स्वस्थ है, तीन किलो का है लगभग।" लेकिन किसे पता था कि ये खुशी अपने पीछे इतना बड़ा गम लेकर आएगी। दो घंटे बाद जब परिजन अस्पताल से लौटे तो रोते-बिलखते। नवजात शिशु को गोद में लिए उसकी नानी विलाप किए जा रही थी- "इ क्या कर दिए भगवान! इ क्या हो गया

रामजी... मेरी बच्ची ...खुशबू रे... काहे तू छोड़के चली गई रे... अब इ बच्चा कैसे रहेगा भगवान जी... ऐ दुर्गा माई तू निर्दय क्यों हो गई इतना?.... हे भोलेनाथ! ये क्या कर दिया आपने?" भीड़ स्तब्ध, मौन! किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि जवान पुत्री की मौत पर क्या ढाढ़स दे! जब रोने-धोने का शोरगुल थोड़ा कम हुआ, तो खुशबू की माँ ने बताया-

"इ चोट्टा हरामजादा डाक्टर! मार दिया मेरी बच्ची को।... क्या बताएँ बहनजी, नारमल डिलीवरी हुआ था। सबकुछ सही था। लेकिन इ डॉक्टर लोग ही लापरवाही के चलते...। ब्लीडिंग नहीं रोक पाया ये लोग। ज्यादा खून बह जाने की वजह से...।" खुशबू के पिता के चेहरे पर क्रोध साफ दिखाई दे रहा था- "छोड़ेंगे नहीं हम इन लोगों को। साला अनपढ़ डॉक्टर! मुकदमा ठोकेंगे इन लोगों पर। लापरवाही का।" फिर लोगों ने अपने-अपने निष्कर्ष निकाले, जिनका सार यही था कि सरकारी अस्पताल की यही कहानी है। क्या किया जाए!

रह-रह कर प्रकाश की आँखों के सामने उस लड़की का चेहरा घूम जाता। और फिर उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगता। कई बार वह अपने ससुर को फोन कर चुका है। हर बार यही जवाब- "अभी नहीं हुआ है। डॉक्टर साहिबा कर रही थीं कि थोड़ी देर और देख लेते हैं। नहीं तो ऑपरेशन करना पड़ेगा।" ऑपरेशन के नाम से प्रकाश का खून सूख जाता है। नहीं-नहीं, कहीं सच में ऑपरेशन करना पड़ गया तो? उसका ध्यान आज ट्रेनिंग में बिल्कुल नहीं लग रहा है। आज ट्रेनिंग का अंतिम दिन है। इसलिए पढ़ाई से ज्यादा लोग अन्य चीजों में व्यस्त हैं। एक-दूसरे को अपना मोबाइल नंबर दे रहे है और प्रशिक्षक भी ट्रेनिंग का माहौल हल्का रखने की कोशिश कर रहे हैं। सबसे अपने अपने अनुभव बताने को कहा जा रहा है कि बीता हफ्ता कैसा रहा। ...लेकिन प्रकाश का दिल और दिमाग कहीं और है। बिहार के एक छोटे-से कस्बे के एक छोटे-से अस्पताल में।

दो घंटे बाद ससुर जी का फोन आया और उन्होंने बिना सस्पेंस के एक ही वाक्य में सब कह दिया-"ऑपरेशन करना पड़ा।... लड़की हुई है।" और फिर जवाब का इंतजार किए बगैर कहते गए- "लक्ष्मी आई है। देखिए, आते-आते आपके लिये नौकरी लेते आई। बहुत शुभ-लक्षण वाली है।" प्रकाश को कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। उसने बस इतना ही पूछा- "सीमा कैसी है?"

"अभी होश नहीं आया है उसको।... बहुत कमजोर हो गई थी। पाँच बोतल खून चढ़ाना पड़ा है।"

अब सोचने-समझने का वक्त नहीं है। मुझे निकलना होगा। और फिर क्लास को अधूरा छोड़कर वह बाहर निकल गया। लैपटॉप निकालकर वह फ्लाइट्स की टाइमिंग देखने लगा। शाम को सात बजे सबसे पहली फ्लाइट है। नौ बजे तक कोलकाता। फिर वहाँ से रात में ट्रेन पकड़कर सुबह तक आरा पहुँच जाएगा। आमतौर पर वह कोई निर्णय लेने में बहुत समय लगाता है, किंतु आज उसने दुबारा सोचने की भी जरूरत नहीं समझी। जाना है तो जाना है।... और थोड़ी देर बाद जहाँ अन्य लोग अपनी-अपनी पोस्टिंग वाली जगह पर जा रहे थे, उसका ऑटो एयरपोर्ट की ओर गतिशील हो रहा था। चलने से पहले उसने ससुरजी को फोन किया। लेकिन फोन स्विच ऑफ बता रहा था। और सीमा का फोन तो सबुह से ही बंद था। उसकी घबराहट बढ़ने लगी। किसको फोन करूँ? ईश्वर, सब

खैरियत तो है न! जिस प्रकाश ने अपने जीवन से ईश्वर को निकाल दिया था, आज अनायास ही उसकी जुबान पेपर भगवान आ रहे थे। सीमा से शादी टूटने की असह्य पीड़ा के बाद उसने ये प्रण किया था कि फिर कभी भगवान की शरण में नहीं जाएगा। पर विधाता की मर्जी! वह भगवान को सिर्फ याद ही नहीं कर रहा था, उसके होंठ अनवरत भगवान के नामों का जाप कर रहे थे। उसे याद आया, कुछ ऐसी ही स्थिति में वह दिल्ली से चला था जब पिताजी राँची में अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रहे थे। लेकिन उस बार उसकी जुबान पर ईश्वर नहीं आए थे। उसने खुद से यही तर्क किया था कि भगवान का नाम लेने से अगर मौत टल जाती, तो दुनिया में कोई मरता ही नहीं।... लेकिन आज...।

***

हर किसी की जिंदगी में कुछ पल ऐसे आते हैं, जिन पर यकीन करना एकबारगी मुश्किल होता है। कभी-कभी तो अपनी आँखों पर भी यकीन नहीं होता कि क्या ये सच है! कंधे पर बैग लटकाए, अस्पताल के बरामदे में खड़े प्रकाश को देखकर लोगों की आँखें खुली रह गईं। प्रकाश ने जो पहला प्रश्न किया, वो यही था- "सीमा कैसी है?"

"अच्छी है। लेकिन आप यहाँ कैसे?" ससुरजी उसे उस कमरे में ले गए, जहाँ सीमा भर्ती थी। तकिए पर पीठ टिकाए सीमा बाहर की ओर ही देख रही थी। उस समय सीमा के मन में क्या भाव आए होंगे, उसका वर्णन करना मुश्किल है। मुँह खुला का खुला रह गया। शायद उसने यही पूछना चाहा था कि 'यहाँ कैसे?' ससुरजी कुछ सोचकर वहाँ से हट गए थे और प्रकाश ने सीमा से यही पूछा था- "कैसी हो?" "आपके सामने हूँ, देख लीजिए।" उसने ऊपर से नीचे तक सीमा को देखा। बिल्कुल अलग। इस रूप में कभी नहीं देखा था उसने। खुले बाल, थका और कमजोर चेहरा, हाथों में इंजेक्शन के दाग, नाइटी के दो बटन खुले हुए। शायद अभी-अभी स्तनपान कराया था उसने।

"मैं तो घबरा ही गया था एकदम से। तुम्हारा भी फोन बंद, पापाजी का भी फोन बंद। ... ऊपर से ऑपरेशन का डर।"

"क्यों घबरा गए थे? हम लोग नहीं हैं क्या यहाँ?" सासू माँ हँसते हुए कमरे में दाखिल हुईं और उनके पीछे खिलखिलाती हुईं उनकी गोतनी, बहन और ननद। सबने मजाक किया- "पाहुन तो ऐसे घबराए हुए हैं, जैसे इनको ही बच्चा हुआ है।"

"प्यार है इ नए जमाने का। लव।" हा-हा-हा...हा-हा-हा।

प्रकाश के लिए अब उस घटना का जिक्र करना जरूरी हो गया था, जिसने उसे यहाँ आने पर मजबूर किया था। सुनकर सीमा की आँखों के किनारे गीले हो गए थे और महिलाएँ गंभीर।

"सच ही है। ऐसी बातें सुनकर किसी का भी जी घबरा जाता है। और पाहुन तो सात समंदर पार परदेस में अकेले थे।... अच्छा किए आ गए। पैसा आते-जाते रहता है, मन में संतोष हो गया न।"

इतने छोटे बच्चे को छूना तो दूर, कभी देखा भी नहीं था प्रकाश ने। आज पहली बार उसने इस नन्हे-से शिशु को हाथों में उठाया। तौलिए में लिपटी हुई वो बच्ची कोई हरकत नहीं कर रही थी। उसका लाल-लाल शरीर, सिकुड़ी हुई त्वचा, छोटी-सी बंद मुट्ठी। अपने आप ही उसके हृदय में प्यार उमड़ आया।

“कितनी प्यारी है ये! सच में अद्भुत!”

“तो इसी को देखने यहाँ तक आ गए?” सीमा ने पूछा।

“आए तो थे किसी और को देखने, लेकिन इसको भी देख लिया।”

“लेकिन आप इतने लापरवाह कैसे हो सकते हैं? आपको डर नहीं लगता, इस तरह ट्रेनिंग बीच में छोड़ के आ गए?”

“ट्रेनिंग छोड़कर नहीं आया हूँ। पूरी करके आया हूँ, और नई जगह पर जॉइन भी कर लूँगा।... लेकिन अगर बीच में आना पड़ता, तो भी आ जाता।”

“चुप रहिए! नौकरी ज्यादा जरूरी है या बीवी?”

सीमा के हाथों को अपने हाथ में लेकर प्रकाश ने कहा- “ये भी कोई पूछने की बात है!”

समाप्त